ओ३म्

श्रीमद्भागवतसमीक्षा

आ० भवानीलाल भारतीय
संख्या ... वि-३५ ...
विषय ...
पुस्तकालय ... २३७२ ...

पुराणसमीक्षा माला सं० २

जो

सनातनधर्मियों के भ्रमनिवारणार्थ

परीक्षितगढ़ निवासी

छुट्टनलाल स्वामी ने बनाया

और

सामवेद भाष्यकार "वेदप्रकाश" सम्पादक

पं० तुलसीराम स्वामी ने अपने

स्वामि मेशीन यन्त्रालय मेरठ में

मुद्रित किया

अगस्त १९०५

प्रथमबार ११००　　मूल्य ।=)

विषय ... वि-५ ...
दिनांक ...

ओ३म्

भूमिका

वाचकवृन्द ! वेदमतमार्त्तण्ड को पौराणिक घटा ने ऐसा दबाया है कि संसार में घोर रात्रि प्रतीत होती है । यद्यपि श्री स्वामी शङ्कराचार्य आदि महापुरुषों ने कठिन प्रयत्न से वेदभगवान् भास्कर के अगणितगुण गण सुभा दिये थे, तथापि अधिकतर पौराणिक पोल न खोलने के कारण शङ्कर स्वामी के मत को ग्रास करने में पौराणिक कृतकृत्य होगये । चाहे उन्हों ने शङ्कर को शङ्करावतार भी कहकर विश्व में विशेष प्रतिष्ठा बढ़ा दी है, परन्तु सिद्धान्त हानि अवश्य हुई । क्योंकि—

शाक्तैः पाशुपतैरपि क्षपणकैः

इत्यादि प्रमाणों से प्रमाणित है कि स्वामी शङ्कराचार्य सम्प्रदायों का खण्डन कर चुके हैं । अस्तु- जब से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पौराणिकमत खण्डन कर वेदधर्म को पुनरुज्जीवित किया है तब से पौराणिक भाई अकुला उठे हैं । अब जब तक १८ हों पुराणों का खण्डन न कर दिया जावे तब तक वेदभगवान् की किरणों का प्रकाश व्याप्त न होगा । पुराणोंका खण्डन सब से पूर्व भागवत से आरम्भ हुवा है क्योंकि इस देश में भागवत का ही प्रचार अधिक है "विद्यावतां भागवते परीक्षा" यह वाक्य भी प्रसिद्ध है ॥

भागवत का मूल परीक्षित राजा से आरम्भ है । मेरा स्थान भी यहां परीक्षितगढ़ ही है इस लिये मेरा किया खण्डन अच्छा हो जावेगा । यदि यह पुस्तक रुचिकर हुवा तो और सब पुराणों का भी खण्डन किया जावेगा ॥

छुट्टनलाल स्वामी
परीक्षितगढ़-मेरठ

विज्ञप्ति

इस भागवतसमीक्षा के लिखते समय हमने दो पुस्तक छपे रखकर श्लोक संख्या लिखी है, एक जगदीश्वरप्रेस बम्बई का श्रीधरी टीका बहुत पुराना लेथो का छपा। दूसरा श्रीवेङ्कटेश्वर बम्बई का छपा भाषाटीका जो ब्रजभाषा में किसी पण्डित का बनाया था, उस को पं० ज्वालाप्रसाद जी महोपदेशक श्रीभारतधर्ममहामण्डल वालों ने शुद्ध किया है॥

भाषाटीका का इस लिये आश्रय लिया कि हमारे अर्थ पर पाठक कदाचित् खेंचतान की शङ्का करें, इस से उन्हीं का किया अर्थ वा आशय हम ने लिखा है तथा २ ग्रन्थ ही भाषाटीका के हम को प्राप्त हुवे थे, फिर उन पण्डित जी ने हम को नहीं दिखाया, जिन के पास पुस्तक था, अस्तु॥

अब निवेदन है कि हमारा विचार इसी प्रकार १८ हों पुराणों पर एक२ पुस्तक लिखने का है इस लिये जिन को जो शङ्का जिस पुराण में मिले, वह पते सहित हम को लिख भेजें तो शीघ्र२ अन्य पुस्तक भी निकल आवें और इस की ग्राहकवृद्धि करने का भी उद्योग करें॥

इस पुस्तक में पुराणपरीक्षा से भी २। ३ कथा लेली गई हैं, जो प्रसिद्ध पं० रुद्रदत्त जी का लिखा है॥

सम्पादक

ओ३म्

भागवतसमीक्षा

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजुः

हे वरणीय परमात्मन् ! हमारी बुद्धि को असत्यादि पापों से दूर कर, शुद्ध कीजिये ॥

भ्रातृगण ! आज मैं इस क्षुद्र लेख का आरम्भ इस लिये करता हूं कि भारतीय प्रजा में वेदों का गौरव हो। ईश्वर की भक्ति, ज्ञानादि की वृद्धि हो। धर्मार्थ काम की सिद्धि हो। मेरा प्रयोजन यह कदापि नहीं है कि इस लेख को देख कर किसी का चित्त क्लेशित हो, मैं इस को पाप समझता हूं कि किसी के मन को क्लेशित कर स्वयं प्रसन्न होना या इस अभिप्राय से लेखनी उठाना कि मेरा लेख किन्हीं को क्लेश पहुंचाने में शस्त्र का कार्य दे । मेरी पाठकों से भी बारंबार यही प्रार्थना है कि संसार में कल्याणी वेदवाणी का समादर करने के लिये ही इस पुस्तक को कार्य में लावें, लोगों का भ्रम भगावें या सुप्त पुरुषों को जगावें, किसी का हृदय न दुखावें । यदि कोई पुरुष इस से पौराणिकभाइयों के चित्त को दुखावेंगे तो भी मैं उस अत्याचार का भागी न होऊंगा, क्योंकि शस्त्रनिर्माणकर्त्ता का प्रयोजन रक्षार्थ ही है, हिंसार्थ नहीं। अब यह कार्य परमात्मा की सहायता से ही हो सकेगा । मुझ तुच्छबुद्धि का क्या सामर्थ्य है ?

मेरा विचार है कि जो २ बात वेदवाणी कल्याणी के सदुपदेश में बाधक हैं वही लिखूंगा । ईश्वर मुझे इस प्रकार का बलप्रदान करे और लेखनी से पक्षपात, ईर्ष्या, द्वेषादि दोष दूर करे ॥

१-सभी पुराणों का एक मत कथन है कि वेदमूलक कथा उत्तम हैं, वेद ही सब का आश्रय है, वेद से बढ़कर कोई प्रमाण नहीं, वेद ही सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद की वाणी सर्वोपरि है, जितने अवतार हुवे हैं सब वेदोक्तधर्म की रक्षार्थ ही हुवे हैं और कोई कार्य नहीं था ॥

२–श्रीराम कृष्णादि वेदों के उद्धारक रक्षक थे, वेद के ज्ञाता थे, वेदरक्षार्थ ही उन का सर्वस्व था, वेदों पर उन का प्रेम था, वेद उन को प्यारा था ॥

३–वेद सृष्टि के आरम्भ में जगदीश्वर की आज्ञा प्रकट हुई है, वेद सदा एकसा रहता है, भूमण्डलमात्र का वेद शरण था ॥

४ वेद के ही अर्थ को और वेद के धर्म को प्रचार करने के लिये समस्त पुराण लिखे गये हैं और पुराण वेद के अनुकूल हैं ॥ हम ऊपर की बातों को ध्यान में धर कर ही इस पुस्तक में यह दिखाने का यत्न करेंगे कि पुराण वेद शास्त्र से कैसे २ कहां २ विलग हो गये हैं और वैदिकधर्म को उन से कैसी हानि हुई है । सब से प्रथम आज "श्रीमद्भागवत" की ही समीक्षा करते हैं क्यों कि यही पुराण सर्वोच्च माना जाता है ॥

हम यह नहीं कहते हैं कि पुराणों में सत्य लेशमात्र भी नहीं है। ऐसा तो कोई भी पुस्तक प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, जिस में सत्य का लेश भी न हो परन्तु जो लोग "पुराणं पञ्चमो वेदः" पुराण को वेद की समता देते हैं वा पुराणों को अक्षरशः सत्य मानते हैं, उन को ही सत्य के आश्रय लाने के लिये हमारा श्रम है ॥

सब से पहिले हम को भागवत के माहात्म्य का थोड़ा वर्णन कर देना भी उचित जान पड़ता है। यद्यपि श्रीमद्भागवत के माहात्म्य अन्य भी हैं, परन्तु हमारे पास आज पद्मपुराण प्रोक्त माहात्म्य उपस्थित है, उसीका विचार करना प्रारम्भ करते हैं ॥

(१) इस में सब से पूर्व के श्लोक में व्यासदेव की स्तुति की गई है । जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि पद्मपुराण व्यासकृत नहीं क्योंकि सभ्यजन स्वयं अपनी स्तुति आप नहीं कर सकते ॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं, द्वैपायनो विरह-
कातरआजुहाव। पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मि ॥ १ ॥

अर्थात् विरक्त पुत्र शुकदेव के विरह में व्याकुल व्यास मुनि–हे पुत्र ऐसा कहते हैं, पुत्र उत्तर नहीं देता, वृक्ष ही उत्तर देते हैं । ऐसे कातर व्यास जी को नमस्कार है ॥

(२) आगे शौनक जी सूत जी से कहते हैं कि:—

इह घोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः ।
क्लेशक्लान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ५ ॥

(अ० १ । श्लोक ५)

अर्थात् इस घोर कलियुग में जीव राक्षस हो गया, उस की क्लेशनिवृत्ति का क्या उपाय है ? ज्ञात हुवा कि इस समय कलियुग वर्त्तमान था क्योंकि "गतः" और "इह" पदों से स्पष्ट है ॥

(३) सूत जी उत्तर देते हैं कि:—

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ १० ॥

अर्थात् कालसर्प के मुखग्रास के त्रासनाश के लिये श्रीमद्भागवतशास्त्र कलियुग में शुक ने कहा है, इस से भी सिद्ध है कि जब भागवत कथा शुकदेव जी परीक्षित को सुना चुके, तब पद्मपुराण बना है ॥

(४) आगे लिखा है कि देवता अमृत का घड़ा लेकर वहां आये, जहां श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित को कथा सुनाते थे और आकर कहा कि:—

शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ।
कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १३ ॥
एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ।
प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १४ ॥
क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्वमणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवान् जहास ह ॥ १५ ॥
अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथाऽमृतम् ।
श्रीमद्भागवती वार्त्ता देवानामपि दुर्लभा ॥ १६ ॥
राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः ।
सत्यलोके तुलां बद्ध्वाऽतोलयत्साधनान्यजः ॥ १७ ॥
लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ।

अर्थात् स्वार्थी देवता आकर कहने लगे कि यह अमृत का घड़ा लीजिये भागवत हमको दीजिये। सर्प काटने पर राजा अमृत पान कर अमर रहेगा, हम कथामृत पीवेंगे॥ १४॥ इस पर राजा परीक्षित हंस पड़े कि कहां कथारूप महामणि! कहां अमृतरूप काच!! और देवतों को अभक्त जान कर भी कथामृत नहीं दिया। भागवत देवतों को भी दुर्लभ है। राजा का मोक्ष देख ब्रह्मा भी चौकले हो गये और सत्यलोक में तराजू बांध तोल कर देखा तो समस्त मोक्षसाधन भागवत से कम हुवे॥

(५) आज यहां यह पिष्टपेषण करने का अवसर नहीं है कि परीक्षित के जन्म से भी पूर्व शुकदेव स्वर्ग पधार चुके थे। देखो "भागवतपरीक्षा" परन्तु इस में इतनी बात वक्तव्य है कि:—

क–देवताओं को स्वार्थी बताना, और भागवत को इस प्रकार मांगना, हमारी समझ में तो देवता भी सुन सकते थे और परीक्षित भी। अब भी कथा में अनेक श्रोता सुनते हैं॥

ख–राजा परीक्षित भी अमृतपान कर देव पद पाजाता और ऐसे धर्मात्मा राजा देवतों को हँस दें, यह भी सभ्यता से विरुद्ध बात है॥

ग–महाभारत के आदिपर्व में तो राजा का कथा सुनने का ज़िकर भी नहीं, न राज्यत्याग है, बल्कि एक स्तम्भ के स्थान पर बैठा रहना, वैद्य तथा औषधों का संग्रह करना, और वहीं राजकार्य करते रहना भी लिखा है। देखो हमारी बनाई "भागवतपरीक्षा"

घ–अमृत को काच और भागवत को महामणि लिखना, हमारे पाठक जान सकते हैं। जो भागवत की कथा पण्डितजन बांचते हैं, उन से वैद्यों का मान भी विशेष ही होता है॥

ङ–देवतों को भक्त न बताना भी हमारी बुद्धि से बाहर है क्योंकि मनुष्यों व राक्षसों से देवयोनि ही उत्तम, पवित्र, शुद्ध सब पुराणों का मत है॥

च–ब्रह्मा जी का विस्मय, तराजू बांधना, भागवत का तोलना भी चिन्त्य है और योगसाधन आसन प्राणायामादि जप तप सब को हलका बताना भी इस पद्मपुराणकर्त्ता ने व्यास जी का दर्शन ग्रन्थ भी नहीं देखा सिद्ध करता है॥

(६) आगे श्लोक २० में लिखा है कि सनत्कुमारों ने नारद जी को भागवत सुनाई। फिर २१ में ब्रह्मा से सुनना कहा गया है कि:–

यद्यपि ब्रह्मसंबन्धाच्छ्रुतमेतन्महर्षिणा ।
सप्राहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २१ ॥

अब कौन बात सत्य माने, यह परमात्मा ही जाने कि ब्रह्मसम्बन्ध से नारद जी ने कौन सा भागवत सुना था, क्या जिस में शुकदेव राजा परीक्षित का सम्बन्ध और भाषण है, या अन्य ?

(७) आगे शौनक ने सूतजी से बूझा कि नारद ने उपदेश कहां कैसे पाया ? तब सूत जी ने सुनाया कि हे शौनक ! शुकदेव जी ने मुझे यह कथा सुनाई थी कि एक समय विशाला नदी पर नारद और ५ ऋषियों का समागम हुवा था। कुमारों ने बूझा कि हे नारद ! दीनमुख कहां से आ रहे हो । तब नारद जी ने कहा कि मैं पृथ्वीतल पर सर्वोत्तम स्थान जान आया था। पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग और सेतुबन्ध में घूमा, कहीं भी सन्तोषकारण कल्याण नहीं पाया । अधर्ममित्र कलियुग ने अब पृथिवी को बाधित किया हुवा है । सत्य नहीं, तप नहीं, शुद्धि नहीं, दया दान नहीं । उदरंभर (पेटार्थी) वराक असत्यवादी मन्दमति मन्दभाग्य उपद्रवी लोग हो गये । सन्त=पाखण्डी, संन्यासी=गृहस्थी हो गये । घर में स्त्रीप्राबल्य, साले बुद्धिदाता, कन्याविक्रेता हो गये । आश्रम मुसल्मानों ने रोक लिये, तीर्थ नदी देवमन्दिर दुष्टों ने नष्ट कर दिये । न योगी हैं, न सिद्ध हैं, ज्ञानी सत्पुरुष कलिदावानल से दग्ध होगये हैं ॥

यह सब कथा मुसल्मानी औरङ्गज़ेब के ज़माने की ज्ञात होती हैं और क्रियापद भूत काल के हैं, इस से यही ज्ञात होता है कि पद्मपुराण समस्त नहीं तो यह भाग तो अवश्य कलियुग में भी पीछे से ही बना होगा। और इस से एक और भी शङ्का होती है कि जब तीर्थों में जाकर नारद जैसों की बुद्धि को कल्याण स्थिरता वा सन्तोष न हुवा तो अन्य पुरुष आज कल के भांग चरस उड़ाने वाले साधु विषयी गृहस्थ किस प्रकार वहां तीर्थों में शान्ति वा सन्तोष कल्याण लाभ कर सकते हैं । फिर वृथा धन खोना न हुवा तो और क्या फल होगा ? तथा नारद जी ने सब तीर्थों में ऊपर कहे जैसे पुरुष सर्वत्र देखे, इस से ज्ञात हुआ कि तीर्थों में पात्रता जाती रही थी। भला इन कथाओं के होने पर भी द्वापर में पुराणों की रचना मानना कब सम्भव है ?

(८) आगे नारद जी ने कहा कि भक्ति जवान और ज्ञान वैराग्य बूढ़े भक्ति के दो पुत्र वृन्दावन में मुझे मिले। भक्ति रोती थी कि हाय! मेरे पुत्र बूढ़े होगये। मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में बढ़ी, कुछ २ महाराष्ट्र देश में भी बढ़ती रही, गुर्जर देश में बूढ़ी होगई हूं॥

तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥४८॥ इत्यादि

अर्थात् भक्ति नारद जी से कहती है कि घोर कलियुग के योग से पाखण्डियों से मेरे अङ्ग खण्डित होगये। मैं बहुत काल से पुत्रों सहित दुर्बला हो रही हूं। परन्तु वृन्दावन में आकर मैं तो जवान होगई, मेरे पुत्र दोनों वृद्ध ही पड़े सोते हैं, यही मुझे सोच है। कहां जाऊं, क्या करूं?

समीक्षा—

प्रथम तो भक्ति तथा ज्ञान वैराग्य को मनुष्यों का वा स्त्री का रूप बनाना ही उचित नहीं क्योंकि यह शरीरधारी नहीं। दूसरे अलंकार मानें तो ज्ञान को भक्ति का पुत्र बताना भी कैसे उचित है क्योंकि ज्ञान विना किसी में भक्ति करना भी बुद्धिमत्ता नहीं। तीसरे भक्ति को वृन्दावन में आकर फिर से जवान होना भी घोर कलियुग में बताना ठीक नहीं, क्योंकि घोर कलियुग तो पुराणों के मतानुसार अब ५००० वर्ष बीतने पर भी नहीं है, अभी तो प्रथमचरण भी पूर्ण नहीं हुवा है। चौथे ज्ञान, वैराग्य को सोते हुवे वृद्ध बता कर भी वृन्दावनवासियों को अज्ञानी बताया है और वैरागियों का भी खण्डन कर दिया और कलियुग में पुराणों की रचना तो श्लोक ३५। ३६। ५५। ६१। ६२ सभी से सिद्ध है। अ० २ श्लोक १०। १२। १३ में भी कलियुग की वर्तमानता का वर्णन है॥

(९) आगे कलियुग को अन्य युगों से श्रेष्ठ बताया है कि—

कलिना सदृशः कोपि युगो नास्ति वरानने!।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥१३॥

अर्थात् नारद जी मुक्ति से कहते हैं कि कलियुग के समान और कोई युग नहीं है। कलियुग में ही तुझे घर २ जन २ में स्थापित करदूंगा॥

तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयाः कृष्णमन्दिरम्॥१५॥

और भी–

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥
कलौ भक्तिर्कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णःपुरःस्थितः ॥ १९ ॥
अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

अर्थात् जो जीव इस कलियुग में तुझ (भक्ति) युक्त होंगे वे पापी भी निर्भय हो कर कृष्णमन्दिर में जायंगे ॥ १५ ॥ न तपों से, न वेदों से, न ज्ञान से, न कर्मकाण्ड से ईश्वर का आराधन हो सकता है, केवल भक्ति से ही ईश्वराराधन होता है, इस में प्रमाण गोपिका हैं ॥ १८ ॥ कलियुग में भक्ति ही है, भक्ति ही है, भक्ति से कृष्ण पास है ॥ १९ ॥ व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञान कथा समाप्त करो, एक भक्ति ही मुक्तिदात्री है ॥ २१ ॥

वक्तव्य प्रथम तो पापी भक्त कैसे होंगे ? जो पापी है वह भक्त नहीं, जो भक्त है वह पापी नहीं । फिर पापियों का कृष्णमन्दिर (वैकुण्ठ) में जाना कब सम्भव है ? दूसरे श्लोक १८ में तप, वेद, ज्ञान, कर्म सब को वृथा बताना भी ठीक नहीं, जब कि शास्त्र में लिखा है कि:–

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ॥

ज्ञान के विना मुक्ति नहीं है, तब उक्त बातों का हम कैसे विश्वास करें॥

तीसरे अब इस से अधिक अन्य पुराण के टीका वा अर्थ की कुछ भी आवश्यकता नहीं । जब स्वयं भागवत का माहात्म्य ही बताता है और उदाहरण में गोपिकाओं को वर्णन करता है । जो लोग श्रीकृष्ण को योगी और गोपियों को वासना इन्द्रिय वा अन्य अलङ्कार बताते हैं, वे पुराण कथा के आशय से बहुत ही दूर चलेजाते हैं । यहां स्पष्ट कर दिया कि तप वेद ज्ञान कर्म की आवश्यकता नहीं, फिर जो लोग गोपियों को श्रुति आदि का अलङ्कार कहते हैं वे इस चमत्कृत समय में सत्य को छुपाने का उद्योग

करते हैं। भागवतकर्त्ता का प्रयोजन गोपिकाओं की कृष्ण के साथ वही भक्ति जताना है, जो दशमस्कन्ध में रासक्रीड़ा लिखी है और आज कलियुग के कवियों ने ऐसी खुल्लमखुल्ला की है कि कहते लज्जा आती है। बालक बच्चों को, पतियों को छोड़ रात्रि में श्रीकृष्ण के पास रास में जाना ही नहीं बल्कि लहंगा गले में, ओढ़ना पाहों में, नूपुर बिछवे हाथों में, कङ्कण पहुंची पाहों में पहिर दौड़ना लिखा है। फिर इस से बढ़कर श्रीकृष्ण सरीखे परम योगीश्वर को क्या कलङ्क पङ्क में घसीटते? हम पूर्व ही लिख आये हैं कि श्रीकृष्णादि को वेदमार्गप्रवर्त्तक बताने में विघ्नकारी होने से ही हम पुराणों के विपक्ष में हैं॥

हम श्रीरामचन्द्र श्री कृष्णचन्द्र को पूर्ण वेदज्ञ महापुरुष मानते हैं और उन की परम प्रतिष्ठा की वृद्धि करना मात्र ही हमारा प्रयोजन है। इस लिये भागवत के माहात्म्य की इस कथा से पाठकों की रुचि हटाना ही उत्तम जानते हैं॥

१०- अध्याय १-में नारद जी ने भक्ति से यह भी कहा कि कलियुग तो तभी से आगया है जब से कि श्रीकृष्ण परमधाम को चले गये। राजा परीक्षित ने दिग्विजय में भी कलियुग को इस लिये छोड़ दिया है कि:-

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्त्तनात्॥ ६७॥

अर्थात् जो फल तप योग समाधि से नहीं होता सो फल कलियुग में केशव कहने से होता है। इसी लिये तो-

विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च॥ ६८॥

कलियुगी जनों के हितार्थ ही परीक्षित ने कलि की स्थापना की थी।

समीक्षा-

भला राजा ने स्थापित किया। यह समय भी कभी मूर्त्तिमान् हो सकता है? क्या कभी कोई सावन भादों वा माघ फाल्गुन को या ज्येष्ठ को रोक सकता है वा आदित्यवार के उपरान्त सोमवार को भी नहीं आने देगा? यदि मान भी लें तो भी ऐसे दूरदर्शी राजा का अनुमान ठीक न हुवा और कलियुग ने मनुष्यों की बुद्धि का नाश कुछ काल में ही कर दिया, क्योंकि

११–आगे—

विप्रैर्भागवती वार्त्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥१॥७०॥
अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका सैरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥१॥७१॥इत्यादि

अर्थात् ब्राह्मणों ने अन्न के लोभ से भागवत की कथा घर घर जने २ को सुनादी । इस लिये कथा का सार जाता रहा ॥ ७० ॥ तीर्थों का सार पापी नास्तिकादि मनुष्यों के वास से जाता रहा ॥ ७१ ॥ कामी क्रोधी स्त्रीयों ने तप कर तप का सार खोदिया ॥ ७२ ॥ पण्डित जन पुत्रोत्पादन में चतुर, मुक्ति साधन में मूढ़ होगये ॥ ७३ ॥

अयं तु युगधर्मो हि वर्त्तते कस्य दूषणम् ॥ १ ॥ ७६॥

अर्थ–यह तो युग का ही धर्म है और दोष किस का है ॥१॥ ॥ ७६ ॥

समीक्षा

यदि भागवत सुनना धर्म है तो घर २ जन २ को ब्राह्मणों ने सुना दी तो पाप क्या किया ? नारद जी अब क्यों कुढ़ते हैं ? अभी तो प्रतिज्ञा करेंगे अ० २ श्लो० १३ में कि–हे भक्ति ! तेरा प्रचार घर घर जन २ में करूंगा, तू चिन्ता को त्याग दे । क्या श्रीमद्भागवत भक्ति के घटाने का भी कभी काम देती है ? यदि कोई पौराणिक भाई यह कहें कि कलियुग में ब्राह्मणों ने लोभवश शूद्रों को भी भागवत सुनाई इस पर लक्ष्य है, सो भी ठीक नहीं । क्योंकि–

श्रीमद्भागवत में ही लिखा है कि–अ० ४ स्कन्ध १

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

स्त्री, शूद्र और वर्णसंकरों को वेदश्रवण का अधिकार नहीं, उन ही के लिये भारतादि इतिहास पुराणों का प्रादुर्भाव मुनि ने कृपा करके किया है । इसी प्रकार देवीभागवत के प्रथमस्कन्ध अ० २ में भी लिखा है और विष्णु-पुराण अंश ३ अ० ३ में भी लिखा है कि—

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण० दे० भा०
यस्मिन्मन्वन्तरे ये ये व्यासास्तांस्तान्निबोध मे ॥८॥

प्रत्येक द्वापर युग में व्यासरूप विष्णु पुराणों को बनाते हैं। विष्णुपुराण में भी सब के नाम देवीभागवत के समान ही वर्णित हैं। देखो हमारा बनाया "पौराणिकधर्म और पियासोकी" प्रायः सभी पुराणों का यही आशय है कि कलियुग में क्षीणायु, हीनज्ञान पुरुषों के उद्धारार्थ ही पुराणों की रचना हुवा करती है। प्रति द्वापर में व्यास जी बनाते हैं। बल्कि जो मुनि द्वापरान्त में पुराण रचना करता है, वही व्यास कहाता है। इसी द्वापर के अन्त में पराशरपुत्र व्यास हुवे हैं और पूर्वगत २७ द्वापरों में अन्यान्य व्यास हुवे हैं, जिन का वर्णन हम "भागवत विचार" नामक निबन्ध में नक़शा और देवी भा० के प्र० स्कं० अ० ३ के मूल श्लोक भी छाप चुके हैं। और "पौराणिकधर्म और पियासोकी" निबन्ध में विष्णुपुराण के अंश ३ अ० ३ श्लो० ८–१९ तक तथा अर्थ का नक़शा भी छाप चुके हैं। आज हम श्रीमद्भागवत से ही यह जतावेंगे कि श्री भागवत में ही व्यास जी ने द्वापर में कलिकल्मषनाशनार्थ ही यह पुस्तक बनाया है। फिर यदि लोगों ने इसे घर २ जन २ को सुनाया तो क्या पाप किया? जो माहात्म्य में नारद जी श्लो० ७० अ० १ में भक्ति से कुढ २ कर कह रहे हैं और पापों में वर्ता रहे हैं और कथा का सार गया बताते हैं। यदि तभी सार जाता रहा था तो अब तो बिल्कुल ही असार निस्सार पुरानी पड़गई होगी, फिर भागवत सुनना सुनाना दोनों ही बातें व्यर्थ होकर पौराणिकपन्थी पोल से भरा होना स्वयं स्वीकृत करना पड़ेगा। हां! घर २ जने २ को सुनाने में एक बात का अवश्य ध्यान है कि नारद जी उस हंसी में उपस्थित थे, जब राजा परीक्षित के पास अमृत का कलश देवता लेकर आये थे और राजा ने अस्वीकार किया था, हंसी उड़ाई थी। अब देवगण हंसी करने लगे होंगे, नारद जी को यह भय हुवा होगा। या ब्रह्मा की हंडी पर इस चढ़ गई होगी जब कि भागवत को सब मुक्ति के उपायों से तोला था॥

१२–आगे लिखा है कि नारद भक्ति से वार्त्तालाप और उस के पुत्रों (ज्ञानवैराग्य) के पुनरुज्जीवनार्थ यत्न कर ही रहे थे कि व्योमवाणी कल्याणी ने सुनाया कि तेरा श्रम सफल होगा, तब नारद जी ऋषि मुनियों के पास उपाय बूझने चले, कोई चुप हो रहे, कोई असाध्य कहने लगे, कोई भाग

निकले, हाहाकार से तीन लोक भयकारी होगये ॥

हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्य विस्मयावहः ॥ अ० २। ३९ ॥

कोई बोले-योगिराज नारद ही जब उपाय नहीं जानते तब और कोई क्या जाने ? ढूंढते २ सनकादि कुमार मिले, उन्हों ने उपाय बताया कि श्लो०

ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ।
श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥५६॥
वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्त्तते ।
तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥५७॥

अर्थात् लोक में प्रायः स्वर्गसाधक मार्ग सब श्रमसाध्य ही ऋषियों ने प्रकट किये हैं परन्तु वैकुण्ठसाधक मार्ग तो गुप्त ही है, उस का उपदेशक बड़े भाग्य से ही मिलता है ॥ वही मार्ग सुनाने की प्रतिज्ञा से कहते हैं कि:-

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ।
स्वाध्याययज्ञा यज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥५९॥
सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥६०॥

अर्थात् द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योग (साधन) यज्ञ, वेदपाठयज्ञ और पञ्चमहायज्ञादि सब कर्मसूचक हैं, परन्तु सत्कर्मसूचक केवल ज्ञानयज्ञ ही है सो भागवत शुकादि ने कही है । जिस की महिमा इस प्रकार कही है कि-

भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ।
व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥६१॥
प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥ ६२ ॥
ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिप्रेमरसावहा ।
प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत की ध्वनि से भक्ति, ज्ञान वैराग्य पर, २ में जब २ मैं,

फैल जावेंगे और कलियुग के दोष ऐसे भागेंगे जैसे सिंह की गर्जना को सुन भेड़िये भागते हैं ॥ अब कहिये कि अभी तो भागवत को घर २ सुनाने में नारद जी ब्राह्मण बेचारों को दोष धर रहे थे, कलियुगी चिन्ह मान रहे थे, देखो अ० १ श्लोक ७० को, अभी सनत्कुमारों ने भी वही उपाय बताया जो नारद जी भक्ति के बूढ़ा होने का कारण माने हुये थे। इस से ज्ञात होता कि आकाशवाणी भी वृथा ही रही और इसी लिये कदाचित् नारद जी ने सनत्कुमारों को यह कहा है कि:—

नारद उवाच—

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं तदा ॥६४॥
श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥

अर्थात् वेद वेदान्त गीता पाठ से भी भक्ति ज्ञान वैराग्य तीनों न उठे तो श्रीमद्भागवत के (जिस के श्लोक २ पद २ में वेदार्थ ही भरा है) श्रवण से कैसे उठ सकेंगे ? इस के उत्तर में सनत्कुमारों ने यही कहा है कि वृक्ष के मूल त्वचादि में स्वाद नहीं होता जो फल में होता है। दुग्ध में भी वह रस नहीं जो उस के सार घृत में होता है। ईख में भी शर्करा का स्वाद नहीं होता है॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ ७१ ॥
वेदान्तवेदसुस्नाते गीतायाऽपि कर्त्तरि ।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥
तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ।
तदीयश्रवणात्सद्यो निर्व्याधो बादरायणः ॥ ७३ ॥

अर्थात् यह भागवत पुराण वेद से भिन्न है। गीता के भी तो वेद वेदान्त में भली भांति अभ्यास कर अज्ञानसागर में डूबते हुये दुःखित व्यास को भी तो आपने चार श्लोक का भागवत सुना कर शीघ्र ही निःशोक किया था। वही मूल है, इस में संशय न करो ॥

समीक्षा

श्लोक ५६ । ५७ में भागवत के सिवाय सभी को श्रमसाध्य और स्वर्गदायकमात्र बताना और भागवत को वैकुण्ठपददाता बताना कहां तक सत्य है ? यह पाठकों की बुद्धि की तुला ही तोल सकेगी । श्लोक ५९ । ६० का भी भार हम पाठकों पर छोड़ते हैं परन्तु अन्य महोत्तम कर्मों को कर्मसूचक बताना और भागवत को सत्कर्मसूचक बताना ही आश्चर्यमय है । और यहां भक्ति को भूल कर ज्ञानपक्ष की प्रशंसा करना भी हमारी समझ में पूर्वपक्ष को भूलना ही कहावेगा ॥

६१–६२ के श्लोकों का भी इसी प्रकार निर्णय हो सकेगा कि कहीं भागवत की सर्वजनता प्राप्ति को उत्तम, कहीं निकृष्ट । जब कि भागवत के पाठ से कलिकल्मष भाग जाते हैं तो इस की रुकावट करना ही हानिकारक होगा। जो मुखमुख से भागवत पढ़े हैं, जब उन में ही लोभजन्य दोष नारद जी देते हैं कि घर २ कथ लोभ से सुना दिया फिर श्रोता लोभादि से कब बचसकेंगे ॥

वेद वेदान्तादि पाठ और गीता बनाने पर भी व्यास जी का मोह अज्ञान दूर न हुवा और भागवत को वेद का सार पद २ में बताना भी स्वयं अज्ञान का कारण ही कहावेगा । इतनी अत्युक्ति से वेद की महिमा घटाने का यत्न कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं है ॥

१३–आगे माहात्म्य अ० ३ में नारद जी ने सनत्कुमारों से पूछा है कि:–

कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
को विधिस्तत्र कर्त्तव्यो ममेदं वदतामितः ॥३॥

अर्थ–भागवत कितने दिनों में सुननी, क्या विधि करनी, मुझे यह बताइये॥

इस पर सनत्कुमारों ने गङ्गातट पर सुनाना स्वीकार किया और सीधा लोक में चलो २ की धूम मचगई, वहां अन्य बहुत से देवता महर्षि तो आये ही, परन्तु श्री व्यासदेव और छायाशुक भी आये । १२ पुराण ६ शास्त्र ४ वेद सुनने को आये, तीर्थ नदी उपनिषद् सब आये, सब श्लोक न लिख कर हम नमूने के लिये कुछ श्लोक लिखते हैं । यथा–

योगेश्वरा व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलि
जन्हुमुख्याः । सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सह पुत्र-
शिष्याः स्वस्त्रीभिरायययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥

अर्थात् योगेश्वर व्यास, पराशर, छायाशुक, जाजलि, जन्हु को आदि ले सब मुनिगण पुत्र कलत्र शिष्यों सहित अत्यन्त नमते हुवे आये ॥ १४ ॥

समीक्षा

भला व्यास और उन के पुत्र शुकदेव जी को भागवत सुनने की ऐसी क्या आवश्यकता थी जो स्वर्ग से पृथ्वी पर सुनने आये ? और नारद जी ने सनत्कुमारों से विधि क्यों पूछी ? वह तो राजा परीक्षित को सुनाते समय शुकमुख से श्रवण कर चुके थे और यहां श्लोक १३ में देवरात का भी आगमन लिखा है, जो परीक्षित का नाम था । क्या परीक्षित मुक्ति से भी फिर लौट आये हैं या भागवत सुन कर भी मुक्ति नहीं हुई, इस में क्या सिद्धान्त ठहरावें ? अन्य परीक्षितादि की क्या कहैं, जब साक्षात् भागवत के कर्त्ता व्यास जी, उन के पिता पराशर, पुत्र शुकदेव जी की भी मुक्ति नहीं हुई, जिन्हों ने परीक्षित को भागवत कथा सुनाई कही जाती है, जिस मूल पर सारी कथा हो है, तब तो, यही कहावत हुई कि:-

नष्टे मूले नैव पत्रं न पुष्पम्=वा मूले नष्टे कुतः शाखा ।

१४-आगे-सनत्कुमारों ने गङ्गातट पर आय सब देवर्षियों के प्रति यह कहा है कि:-

अथ ते संप्रवक्ष्यामो महिमां शुकशास्त्रजः ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥
सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥२५॥
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः ।
परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च यत् ॥२६॥
तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ।
यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥२७॥
किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥२८॥

अर्थात् अब शुकशास्त्र की महिमा कहते हैं, जिस के सुनने मात्र से मुक्ति हाथ में है। भागवत की कथा को सदा सुनो, सदा सुनो, जिस के सुनने से परमेश्वर चित्त में वास करता है॥ २५॥ यह ग्रन्थ १८००० श्लोक १२ स्कन्ध परीक्षित शुकसंवाद जो सुनेगा, वह तभी तक संसारचक्र में अज्ञान से घूमेगा, जिस क्षण तक शुकशास्त्र कान में नहीं पहुंचा है। अन्य बहुत शास्त्रों के सुनने से क्या होगा और "भ्रमोत्पादक पुराणों" के सुनने की क्या आवश्यकता है? एक भागवतशास्त्र ही मुक्तिदान से गर्जता है॥ २८॥

समीक्षा—

श्लोक २५ तो जब व्यास शुकदेव जी तथा राजा परीक्षित की ही मुक्ति न हुई तब व्यर्थ है। यदि भागवत का अर्थ ईश्वरीय ज्ञान यौगिक करके भी कुछ निर्वाह करते, जैसे आजकल के चतुर पौराणिक पण्डित कर लेते हैं, तो २६ के श्लोक ने बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि परीक्षित शुकसंवाद वाला १२ स्कन्ध १८००० श्लोक वाला भागवत ही मुक्तिदायी है। फिर तो परीक्षित ने कौनसी भागवतकथा सुनी होगी? तब तो ११ स्कन्ध ही रहजायंगे क्योंकि द्वितीयस्कन्ध से ही शुक परीक्षितसंवाद प्रारम्भ है। और श्लोकों में भी कमी आवेगी। तथा शुकपरीक्षित संवाद के श्लोक पृथक् रहे। श्लोक २८ में तो सब पुराणों को "भ्रमावह" ही बता दिया है। स्वयं सब का खण्डन होगया॥

१५—आगे श्लोक ३७ से लिखा है कि:—

यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम्।
जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः॥ ३७॥
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः।
नित्यंपुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥ ३८॥

अर्थात् भागवतपाठ करोड़ जन्मों के पाप दूर करता है, इस में कुछ सन्देह नहीं॥ ३७॥ भागवत का आधा चौथाई भी श्लोक पढ़ने में राजसूय अश्वमेध का फल होता है॥ ३८॥

समीक्षा

इस में सन्देह श्लोककर्त्ता को स्वयं था, अतः उस के हृदय में "नात्र संशयः" की रचना हुई है। जब ऐसा है तो फिर पापों से क्या डरना है।

परन्तु बेचारे ब्राह्मणों को घर २ सुनाने में कलियुगी दोष में क्यों घसीटा है? यह ज्ञात नहीं हुवा ॥

१६–आगे श्लोक ४५ में तो दिनों का नियम नहीं बताया परन्तु ४७। ४८। ४९। ५०। ५१। ५२ श्लोकों में सप्ताह का ही माहात्म्य है। यथा—

तेन योगनिधे ! धीमन् ! श्रोतव्या सा प्रयत्नतः।
दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणम्मतम् ॥ ४५ ॥

हे नारद! भागवत यत्न से सुनना चाहिये, इस में दिनों का नियम नहीं, सदा सुनना चाहिये ॥ ४५ ॥

मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा।
दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणम्मतम् ॥४७॥

तथा

कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणम्मतम् ॥ ४९ ॥
यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥
यज्ञाद् गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात्।
तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥५१॥
योगाद् गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति।
किम्ब्रूमो गर्जनं तस्य रेरे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥

इन सब का आशय यही है कि तप, योग, समाधि, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, ध्यान, सब से सप्ताह श्रेष्ठ है। इस की समीक्षा पाठक स्वयं करलेंगे ॥

१७–आगे श्लोक ५३ से सूत जी ने यही बताया है कि श्रीकृष्ण जी ने उद्धव के कथनानुसार भागवत में स्वयं वास किया है, कलियुग में भागवत ही कृष्णरूप है, यही उद्धार करेगा। यदि इस बात पर सनातनधर्मियों का पूर्ण विश्वास होता तो भारतधर्ममहामण्डल के बनाने की आवश्यकता नहीं होती ॥

१८–आगे और विचित्र बात है। कहां तो अ० ४ श्लोक ८ में पशु पक्षी

भी सप्ताह सुन निष्पाप हो गये लिखे हैं। यथा—

मूढाःशठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥८॥

और अभी दो श्लोक पीछे कहते हैं कि इतने पापी सप्ताह से पवित्र नहीं होते। यथा— कुमाराऊचुः—

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः। क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥११॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः। ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१२॥ पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये। ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१३॥ कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये। परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१४॥

अर्थ—इन के दो हो सकते हैं, यदि "सप्ताहयज्ञे" का सप्तमी विभक्ति से अर्थ करें तब तो ऊपर लिखे पापी शुद्ध नहीं हो सकते, यह अर्थ होगा। यदि "सप्ताहयज्ञेन" यह तृतीया विभक्ति मानें तो उपर्युक्त पापी सब शुद्ध सकते हैं, यह अर्थ होगा। हम तो दोनों ही अर्थों को असङ्गत समझते हैं क्योंकि यदि ये सब पाप दूर हो सकते हैं तो पापों का भय ही नहीं, यदि सप्ताह उक्त पाप शमन नहीं करता तो प्रथम प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी कि सब पाप दूर होते हैं॥

१९—आगे अ० ४ में अद्भुत बात है कि एक वेदविशारद आत्मदेव ब्राह्मण तुङ्गभद्रा नदी के तट पर धर्मोत्तापुर में वास करता था, श्रौतस्मार्त कर्मों में मानो दूसरा सूर्य था, भिक्षा मांगता था। उस की स्त्री बड़ी लड़ाका धुन्धली नाम की लबार कलहप्यारी हठवती थी। उस में लिखा है कि वह भिक्षुक भी था और धनी भी था। यथा—

भिक्षुको धनवान् लोके तत्प्रिया धुन्धली स्मृता ।
स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरीसुकुलोद्भवा ॥ १८ ॥

फिर—

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्यो रममाणयोः ॥ २० ॥

और भी—

गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥

यहां यदि "भिक्षुकोऽधनवान्" ऐसा अकार का विश्लेष करें तो आगे धन देकर पुत्र लेना और पुत्र के वेश्याओं में धन लुटाने की असङ्गति होगी ॥

१८ वें श्लोक में भिक्षुक और धनवान् दोनों बातें लिखना कैसे सङ्गत हो सकेगा ? क्या पूर्व युगों में ब्राह्मण धनवान् होकर भी भिक्षा मांगते थे ? और जिस की स्त्री कलहकारिणी आदि दुर्वचनों से बताई है; फिर दम्पति का प्रेम कैसे हो सकेगा ? जिस में ब्राह्मण बड़ा धर्मात्मा था, उस लिये २० वें श्लोक की सङ्गति नहीं बैठती, तथा २१ वें श्लोक में कहां तो भिक्षा मांगता था, कहां गौ सुवर्ण वस्त्र दीनों को दान करने लगा ?

न्यायप्रियपाठक ऐसे पाठ को देख कर क्या कल्पना करेंगे, सो ईश्वर ही जाने । परन्तु हमारी समझ में तो यह कल्पना अत्यन्त नवीन है, जब कि कलियुगी ब्राह्मण धन रख कर भी भिक्षा करने वाले हो गये होंगे । धनी को गृहस्थ में भिक्षा करना किसी भी शास्त्र का मत नहीं और यह कैसे धर्मात्माओं का ग्राम था, जहां वेदपाठी ब्राह्मण भिक्षा करें ॥

२०—आगे वह ब्राह्मण पुत्रहीन होने से घर छोड़ वन में प्राणत्यागार्थ चला गया और उस को एक (यति) संन्यासी मिला, संन्यासी को अपने मन का दुःख सुनाया कि न मेरे पुत्र है, जो गौ मैंने पाली थी वह भी बन्ध्या रह गई । वृक्ष लगाये, पर फल नहीं आये । अतः प्राण परित्याग ही करूंगा, ऐसे कह रोने लगा ॥

तद्ग्रालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ ३३ ॥

योगी संन्यासी ने उस के माथे के लिखे अक्षर बांच लिये और कहा कि:-

सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥

सात जन्म तक तेरे पुत्र नहीं है नहीं है ॥

समीक्षा–आश्चर्य है कि इस शरीर में सात जन्मों का भी वृत्तान्त लिखा है, जिस मस्तक में एक दिन की भी दिनचर्या कदाचित् फ़ोटू से कोई लिख सके, परन्तु यहां जन्मभर पर भी सन्तोष न कर सात जन्म का वृत्तान्त लिखना बताया है। क्या केवल सन्तान ही का लेख मस्तक में लिखा होगा? सभी काम लिखे होंगे॥

२१–हम संक्षेप से लिखते हैं कि संन्यासी जी ने एक फल दिया और कहा कि इस फल को अपनी स्त्री को खिलाना, गर्भ होगा। स्त्री ने प्रसववेदना का कष्ट शोच फल गौ को दे दिया और आप ने अपनी बहन को रुपया देकर चोरी से बच्चा मंगा कर अपना प्रसव प्रकट किया। वह बड़ा होकर धुन्धकारी नामक बड़ा वेश्यागामी हुआ। उस ने सब धन वेश्याओं को दे दिया और तीन मास पीछे गौ के पेट से भी मनुष्याकृति पुत्र हुवा, परन्तु कान गौ के से थे। धुन्धकारी माता पिता का धन उड़ाने लगा। एक दिन ५ वेश्याओं ने मिल कर इसे रात्रि में फांसी देकर मार डाला। यह प्रेत हुआ, गोकर्ण ने गया तीर्थ में श्राद्ध किया तो भी प्रेत की सद्गति न हुई। किसी से मुक्ति न हुई, तब सप्ताह श्रवण की आज्ञा सूर्य देवता ने दी, अन्य किसी महर्षि को न सूझी, सब ही व्याकुल रहे॥

समीक्षा–गौ के पेट से मनुष्य होना भी अद्भुत कथा है। फिर ब्राह्मण के मस्तक में कहां तो सात जन्म में पुत्र न था, कहां इसी जन्म में दो पुत्र हो गये। हां, यदि ब्राह्मणी के मस्तक में न बताते तो ठीक भी था॥

दूसरे सप्ताह का माहात्म्य किसी को न सूझा तब सूर्य से बातें करना क्या पहिली बात से कम असम्भव है?

तीसरा तुर्रा यह है कि नारद जी को यह कथा पुरातन इतिहास बताया गया है, नूतन नहीं॥

यहां ८७ श्लोक में यह भी कहा गया है कि जितने पुरुषों ने गोकर्ण के मुख से भागवत सुनी वे मुक्त हो गये, माता के गर्भ में नहीं आये "ते गर्भगता न भूयः" अ० ५ श्लो० ८७ और भी–

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः।
योगैश्च संयातिनतांगतिं वैसप्ताहगाथाश्रवणेन यान्तियाम्॥

अर्थ-वायुभक्षण, पत्रचर्वणादि उग्र तपस्या करके देह सुखाने से वह गति नहीं प्राप्त होती जो सप्ताहश्रवण से होती है ॥

समीक्षा-ठीक है, कर्मों की गति तो पृथक् ही है परन्तु तप को इस में क्यों मिला लिया? भागवतमाहात्म्य के अन्तिम अध्याय के ७० श्लोक से आगे ऐसा ज्ञात होता है कि नारद जी ने प्रथम इसे नहीं सुना था और ७८ से आगे के श्लोकों से विदित हुआ कि शुकदेव जी आये, ८० से "शुकउवाच" है ही, ८४ में बलि अर्जुन उद्धव सब का ही आगमन लिखा है, सो सब विस्तार के भय से नहीं उद्धृत किया गया है ॥

इतना कहना हम और भी उचित जानते हैं कि भा० मा० अ० ६ श्लोक ९३ । ९६ में यह बताया गया है कि कलियुग के ३० वर्ष से अधिक बीते थे, तब परीक्षित को शुकदेव जी ने सप्ताह सुनाई थी और फाल्गुन की नवमी से आरम्भ किया था ॥ ९५ ॥ तथा दो सौ वर्ष पीछे गोकर्ण ने सुनाई, उस से ३० वर्ष पीछे सनत्कुमारों ने सुनाई ॥

समीक्षा-कलियुग में सौ वर्ष से अधिक आयु किसी पुराणकर्त्ता का मत नहीं है, फिर व्यासादि महर्षियों का उस समय में जब कि गोकर्ण ने धुन्धकारी को सप्ताह सुनाया, वर्त्तमान होना सत्य में हानि पहुंचाता है ॥

आगे श्लोक ९९ में लिखा है कि फांसी हाथ में लिये दूत से यम कहता है कि वैष्णवों को मत सताना, छोड़ देना, क्योंकि वैष्णवों का मैं शासक नहीं हूं।

समीक्षा-बस अब तो वैष्णवों की मृत्यु ही नहीं होनी चाहिये, न उन को पिण्डदानादि की आवश्यकता है क्योंकि वे यमयातना से परे हैं ॥

आज माहात्म्य की समीक्षा यहीं समाप्त करके क्रमशः १२ हों स्कन्धों की समीक्षा का आरम्भ करेंगे । जगदीश्वर हमारी बुद्धि को शुद्ध निष्पक्ष रखने में सहायक हों ॥ ओ३म् शम्

इति भागवतमाहात्म्यसमीक्षा समाप्ता

ओ३म्

अथ प्रथमस्कन्धसमीक्षा

१-प्रथमस्कन्ध के आरम्भ में कोई " उवाच " नहीं है, प्रथम श्लोक में स्तुति है, दूसरे में लिखा है कि:-

श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः ।

अर्थात् महामुनि व्यास की बनाई भागवत है ॥

समीक्षा-इस से प्रतीत होता है कि यह अन्योक्ति है, व्यासोक्ति नहीं ॥

२-श्लोक ३ में-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबतभागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥

अर्थात् वेदरूपी कल्पवृक्ष से शुकमुख द्वारा चुवे फल के अमृत की धारा से युक्त भागवतरूप रस का पान करो । यहां भागवत वेद का फल बताया है, शुकदेव मुनि को तोता कहा है, भला ये श्लोक व्यासकृत कैसे हो सकेंगे जिन में व्यास अपने को ही महामुनि कह कर अन्योक्तिवत् कहते हैं ?

३-श्लोक ७ में भी कहा है कि:-

यानिवेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ।

अर्थ-जो वेदविदों में श्रेष्ठ व्यास भगवान् ने बनाया है और अन्यों के बनाये शास्त्र तुम मानते हो ॥

इस से यह भी व्यासोक्ति नहीं सिद्ध होती । तथा च—

श्लोक ६ से " ऋषयऊचुः " है, " व्यासउवाच " है ही नहीं ॥

भागवत का कलियुग में बनना

माहात्म्य में भी दर्शा चुके हैं, बहुत से प्रमाण भी देचुके हैं, अब श्लोक १० स्कं० १ भी दिखाते हैं । यथा—

४–प्रायेणाल्पायुषः सभ्यकलावस्मिन्युगेजनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥

अर्थ–" इस " कलियुग में मनुष्य अल्पायु, मन्द, मन्दमति, मन्दभाग्य, रोगादि पीड़ित हैं । इस से भी उस समय कलियुग की वर्त्तमानता सिद्ध है । तथा श्लोक २१ में भी स्पष्ट है कि कलियुग में बना है—

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेस्मिन्वैष्णवे वयम् ।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥२१॥
त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्ततीर्षताम् ।
कलिसत्त्वहरं पुंसां कर्णधारइवार्णवम् ॥२२॥

अर्थात् शौनकादि कहते हैं कि कलियुग आया जानकर हम इस वैष्णव क्षेत्र में महायज्ञ में कथा सुनने को बैठे हैं ॥ २१ ॥ ब्रह्मा ने दुस्तर संसार से उतारने को कलिमलहरणार्थ आप महाहरूप हमें दिखा दिये हैं ॥ २२ ॥

५–आगे अ० २ में व्यास जी बोले कि ऐसे बूझने पर सूत ने व्यास को नमस्कार किया । जो श्लोक माहात्म्य के आरम्भ में पद्मपुराण का है वही यहां भी है, उस की वही समीक्षा समझनी चाहिये । परन्तु यहां इतनी बात विशेष है कि व्यासपुत्र शुकदेव जी को भी प्रणाम है । यथा—

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोन्धम् । संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससुनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

इस श्लोक में व्यासपुत्र शुकदेव जी को नमस्कार किया गया है, जिस से पाया जाता है कि यह न व्यासोक्ति है, न परीक्षित के प्रति शुकोक्ति है ॥

तीसरे अध्याय के आरम्भ में ही २४ अवतारों की कथा है, उन का चित्र चरित्र अद्भुत है ॥

१—अवतार—(पुरुषावतार)

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतषोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

आदि में लोकरचनार्थ १६ कला का पुरुषावतार हुवा। इसी के नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुवा। सहस्र पाद करु और सहस्र २ भुजा शिर कान नेत्र नासिका शिर कपड़े कुण्डल धारण किये नाना अवतारों की खानि (बीज) था। इसी के अंश से देवता सर्व मनुष्यादि हुवे हैं। यही सनत्कुमार है। यथा—" सएव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥ ६ ॥ "

समीक्षा—भला कहां नाभि से ब्रह्मा बने कहां सनत्कुमार पर आगये, हज़ारों अङ्गों से कुमार होगये ॥

२—वराह अवतार—

द्वितीयन्तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥

अर्थ—जब पृथ्वी पाताल को चली गई, तब शूकर रूप धारण करके उसे निकाल लाने को विष्णु का अवतार हुवा ॥

समीक्षा—अधिक तो समीक्षा चरित्र के समय करेंगे परन्तु शूकर तो स्थलचर है, नाका बनते तो ठीक था और यह अवतार किस पृथ्वी पर हुवा जब पृथ्वी थी ही नहीं, या पाताल में ही हुवा था ?

३—तीसरा नारद अवतार है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥

तीसरे शास्त्रप्रचारक देवर्षि नारद अवतार हुवे ॥

समीक्षा—यह वही नारद हैं जो माहात्म्य में दुलमुल यक़ीन से मुक्ति के उपाय और भक्ति के उद्धारार्थ घूमे हैं, जिन्हें आकाशवाणी हुई थी और ऋषियों से उपाय बूझे, सनत्कुमारादि की स्तुति की। स्मरण रहे कि स० कु० को भी तो १ अवतार बताया गया है। श्रोता वक्ता दोनों अवतार थे ?

चौथे नरनारायणावतार—

४—तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

नरनारायण तप करने वाले अवतार हुवे ॥

समीक्षा—न जाने ईश्वर भी तप करके और कौन पदवी का अभिलाष करता है। हां महाभारत में तो इन दोनों को अर्जुन कृष्ण का पूर्वजन्म बताया है

परन्तु भगवान् को भी पूर्वजन्म में तप करने ही से पुनर्जन्म में बलवान् होना बताने से तो जीव से ब्रह्म में अधिकता कुछ भी नहीं रहती है ॥

५-वां कपिलदेव का अवतार-

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचाऽऽसुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥

पांचवें सांख्यशास्त्र कर्त्ता कपिलदेव जी हुवे ॥

समीक्षा-यह अवतार भी वेद भगवान् को अपौरुषेय मानता था, जैसा कि सांख्य का मत है ॥

छठा-दत्तात्रेय अवतार-

६-षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्यऊचिवान् ॥ ११ ॥

यह दत्तात्रेय का अवतार है, यह भी अत्रि ऋषि के सुपुत्र थे, समीक्षा पूर्ववत् जानो ॥

सातवां-यज्ञावतार-

७-ततःसप्तमआकूत्यां रुचेर्यज्ञोभ्यऽजायत ।
सयामाद्यैःसुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥ १२ ॥

यह यज्ञावतार का वर्णन है । आकूति से उत्पन्न हुवे ऋषि के पुत्र यज्ञ ने स्वायंभुव मन्वन्तर की रक्षा की ॥

समीक्षा-इस अवतार ने मन्वन्तर भर आयु कैसे पाई ?

८-आठवें ऋषभदेव का अवतार-

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥

आगे आठवां ऋषभदेव जी का अवतार मेरुदेवी का पुत्र और संन्यास-मार्ग का अग्रणी बताया है । इस में भूभारनाशन कुछ नहीं है यह भी १० अवतारों में नहीं है ॥

९-पृथुराजा को नवां अवतार बताया है जिस के जन्म का वर्णन भी अद्भुत है, पुरुष के शरीर को मथने से निकला बताया गया है जहां विस्तार से कथा है जहां [illegible] पृथिवी का दोहन किया है ॥

गुरु विरजानन्द
सन्दर्भ पु
परिग्रहण क्रमांक 2881 ...
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

१०–मत्स्यावतार दशम है, जिस का काम समुद्र में डूबी धरती को निकाल कर वैवस्वतमनु को देना बताया गया है ॥

समीक्षा–भला भगवान् को मछली बताना कितने साहस का काम है ॥

११–कूर्मावतार ११ वां है, देव दानव जब समुद्रमथन करते थे, तब पर्वत की रई (मथनी) नीचे को डूबी जाती थी तो नीचे कमर पर सहार लेने को कूर्म (कछुवा) अवतार हुआ । समीक्षा पूर्ववत् जानो ॥

१२–वां धन्वन्तरि अवतार है,जो समुद्र में से अमृत का घड़ा लेकर निकला॥

१३–वां मोहनी अवतार है, जो स्त्रीरूप था, जिसे देख देव दानव लड़ पड़े और अमृत के बांटने में पक्ष बन कर देवताओं को दिया लिखा है ॥

समीक्षा–क्या यह काम भी परमेश्वर का हो सकता है कि परिश्रम तो दोनों समान करें और आप स्त्री बन के अन्याय करे ?

१४–नृसिंह, आधा पुरुष, आधा शेर, हिरण्यकशिपु को मारने के लिये यह अवतार बताया गया है । यह भी क्षणभङ्गुर अवतार हुआ, क्या ठिकाना है कि एक ईश्वर के ही तीन नाम ब्रह्मा, विष्णु, महेश बताये जाते हैं, फिर एक तो वरदान दे, दूसरा मारने के लिये बनावट बनावे ॥

१५–वामन (बौना) अवतार है, बलि के छलने के ही लिये यह भी कुछ देर को अवतार है, बौना होकर तीन पांव में आकाश, पाताल, पृथिवी को नापना, बाइबिल के व कुरान के मौजिज़े (अद्भुत दृश्यों) के मात करने के अतिरिक्त क्या दृढ़ता रखता है ॥

१६–परशुराम जी १६ वां अवतार हैं, इन्होंने माता का शिर काटा और २१ बार पृथिवी को निःक्षत्रिया किया, परन्तु महाभारत में भीष्म से युद्ध लिखा है, कहां लक्षों वर्ष पूर्व रामचन्द्र के समय में त्रेता में होना, कहां द्वापरान्त में युद्ध करना, कुछ समझ में नहीं आता ॥

१७–व्यास जी का सत्यवती से अवतार है, वह स्वयं ही "कुमारीगर्भसम्भूतः" अपने को भला कैसे बता सकते हैं और यदि भागवत व्यासकृत होता तो यह लिखते कि १७ वां अवतार मैं हूं, सो नहीं है । बल्कि वहां तो इस प्रकार है । यथा—

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥

अर्थ-इस के उपरान्त १७ वीं बार पराशर से सत्यवती स्त्री में उत्पन्न हुवे जिन्हों ने पुरुषों को अल्पबुद्धि देख कर वेदवृक्ष की शाखा बनाईं। यहां 'चक्रे' भूतकाल की क्रिया पढ़ी है, वर्त्तमान की नहीं ॥

१८-रामावतार, श्री रामचन्द्र जी का अवतार बताया है। यथा—

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥

अर्थ-इस के बाद देवकार्य की इच्छा से नरदेहत्व को प्राप्त हुवे, जिन्हों ने समुद्रनिग्रहादि कार्य किये थे ॥

समीक्षा—व्यासावतार से पीछे श्री रामचन्द्र जी का बताना बड़ी भारी भूल है। मूल में "अतः परम्" पाठ है, जिस का अर्थ स्पष्ट "इस के बाद" होता है और "चक्रे" क्रिया भी भूतकाल की है, इस से स्पष्ट है कि भागवत व्यास जी ने नहीं बनाया, बल्कि व्यास के नाम से जिस ने बनाया, उस ने श्री रामचन्द्र जी से भी व्यास के पूर्व होने का कदाचित् अभिलाष किया होगा, इसी लिये व्यास जी को अवतार सिद्ध करके श्री रामचन्द्र जी का नाम गिनाया हो तो आश्चर्य नहीं ॥

१९। २० वें श्रीकृष्ण, बलदेव दोनों भाइयों के अवतार। यथा-

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥

अर्थ-१९। २० वें में वृष्णिकुल में राम (बलदेव) और कृष्ण दो अवतार भूभार दूर करने के लिये हुवे। यहां 'विंशतिमे का विंशतिमे' पाठ टीका ने वेदवत् बता कर टाल दिया है, परन्तु 'भारम्' के स्थान में 'भरम्' पर कुछ नहीं लिखा॥

यहां दोनों भाइयों को अवतार बता कर ५ श्लोक पीछे २८ वें में-

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥

अर्थ-और अवतार तो अंशावतार हैं, परन्तु कृष्ण तो खुद भगवान् ही हैं। यह कितनी भूल की बात है कि अब तो दो भाई बताये, अभी श्री कृष्ण को ही सर्वस्व अवतार बता दिया, यदि स्वयं कृष्ण ही भगवान् थे तो एक ही समय में दूसरे बलदेव जी का होना क्या दो भगवान् को सिद्ध नहीं करता। फिर दशमस्कन्ध अ० ३३ श्लोक २७ में लिखा है कि-

राजोवाच–

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

अर्थ–धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश करने को अंश से जगदीश्वर उत्पन्न हुवे ॥२७॥ फिर धर्म को नाश करने के परस्त्रीगमनादि कर्म क्यों किये? इस का उत्तर शुकदेव जी ने यही दिया है कि जैसे अग्नि सर्वभुक् है, ऐसे ही तेजस्वी पुरुषों को दोष नहीं है । यहां यह प्रसङ्ग नहीं है। यहां केवल यही दिखाना है कि कहीं अंशावतार, कहीं स्वयं पूरा अवतार बताना पुराणों के विश्वास में हानि अवश्य डालता है ॥

इसी पर विष्णु पुराण की साक्षी ने स्पष्ट ही कर दिया कि कृष्ण स्वयं विष्णु भगवान् नहीं थे । यथा– ५ । १

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले ॥
अवतीर्य्य भुवोभारं क्लेशहानिं करिष्यतः ॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा ।
तस्यायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः ॥
अवतीर्य च तत्रायं कंसं घातयिता भुवि ।
कालनेमिसमुद्भूतमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥

अर्थात् जब देवतों ने नारायण की स्तुति की, तब परमेश्वरने १ शुक्ल, १ काला दो बाल अपने उखाड़े और कहा कि हे देवो ! ये मेरे केश पृथ्वी पर अवतार लेकर भूभार हरेंगे, तुम्हारे दुःख की हानि करेंगे, वसुदेव की स्त्री देवकी के ८ वें गर्भ में मेरा केश उत्पन्न होगा, कालनेमि से उत्पन्न हुवे कंस को मारेगा । इत्यादि ॥ तस्याः–तस्य का भी कुछ उत्तर नहीं ॥

अब हम किस वचन पर विश्वास करें, कहीं कृष्ण को साक्षात् भगवान्, कहीं अंश, कहीं केश बताना, पुराणों का व्यासकृत होना तो दूर रहा किसी अन्य भी एक पुरुष के बनाये १८ हों पुराण हों, यह भी ठीक प्रतीत नहीं होता।

२१ वां अवतार "बुद्ध" है । जिस के नाम से बौद्ध धर्म चला है ॥

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजिनसुतः कीटकेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ-कलियुग आने पर दैत्यों के भ्रमाने के लिये 'जिन' का पुत्र कीटक देश (गया) में होगा। किसी २ पुस्तक में "अजनसुत" भी माना है, यह श्रीधरी टीका कहती है॥

समीक्षा-कैसे आश्चर्य की बात है कि जिस बुद्ध ने वेद को नहीं माना, वेद धर्म की जड़ खोदने का उद्योग किया, उसे ही अवतार बताया है। जिस बौद्धमत की शिक्षा है कि-

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः ।

अर्थात् तीनों वेदकर्त्ता भांड, धूर्त्त, राक्षस हुये हैं। अवतार धर्मरक्षार्थ होते हैं, न कि धर्मनाशार्थ। यदि बुद्ध ईश्वरावतार था तो उस की आज्ञा भी ईश्वराज्ञा हुई, फिर उस के मत को न मानना नास्तिकता है, यदि इस को अवतार मान बौद्धों से आत्मसात कर लिया जाता तो भी सौभाग्य था।

२२ वां अवतार "कल्कि" है। यथा-

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्भविष्यति ॥ २५ ॥

अर्थात् युग के अन्त में सन्ध्या समय जब कि राजा धर्मभ्रष्ट डाकू के समान हो जायंगे तब "विष्णुयशा" के घर "कल्कि" अवतार होगा॥

समीक्षा-प्रथम तो किसी युग का नाम नहीं बताया गया परन्तु हम कलियुग का ही अन्त अथवा सन्ध्या मान लें तो भी यहां भविष्यद्वाणी लिख कर कल्किपुराण में भूतक्रिया रखना कितनी भूल सिद्ध करता है। यदि पुराणों के कर्त्ता एक होते तो ऐसा न करते॥

नोट-यद्यपि यहां प्रतिज्ञा तो २४ अवतारों की कथा की है क्योंकि खेमराज के छपे सूचीपत्र में भी स्पष्ट लिखा है कि तीसरे अध्याय में २४ अवतारों की कथा है। परन्तु यहां केवल २२ ही गिनाये हैं। हमने एक पण्डित से बूझा भी था, उस ने १ हयग्रीव, २ हंस, ये दो और बताये परन्तु उन का इस में कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः हम अधिक नहीं लिख सकते॥

पौराणिक जन या तो १० या २४ अवतार मानते हैं, २२ कोई भी नहीं, फिर न जाने क्यों यहां २२ का वर्णन है, सब का नहीं॥

७-चौबीस अवतारों की कथा के उपरान्त अब अ० ३ में ही लिखा है:-

इदं भागवतं नाम पुराणं श्रुतिसम्मतम् ।
उत्तमश्लोकचरितं चकार मतिमानृषिः ॥ ४० ॥
सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ ४१ ॥
सतु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ।

तथा च—

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ ४३ ॥

और भी-

सोहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥४४॥

अर्थात् यह भागवत पुराण वेदसम्मत ईश्वरचरित्र व्यास जी ने सब वेद इतिहासों का सार २ लेकर बनाया है। शुकदेव जी ने राजा को सुनाया है। धर्मज्ञानादि के साथ श्रीकृष्ण के वैकुण्ठधाम जाने पीछे कलियुग में नष्टदृष्टि वालों के लिये पुराण सूर्य का अब उदय हुआ है ॥ ४३ ॥

हां, पौराणिकों के अन्धकार को भगवान् सूर्य भी उदय होकर दूर तो कर ही नहीं सका। विचारे तभी तो धक्के खाते फिरते हैं ॥

व्यास जी ने बनाया कहना स्पष्ट अन्योक्ति है। महाराज परीक्षित को सुनाया। यह कहना भी दर्शाता है कि परीक्षित को प्रथमस्कन्ध तो सुनाना बिलकुल ही असम्भव है। और इस से सिद्ध है कि कृष्ण के पश्चात् ही पुराणों की सृष्टि हुई है ॥

८-अ० चौथे के आरम्भ में ही " व्यास उवाच " है और व्यास कहते हैं कि सूत से शौनक बोले कि किस युग में व्यास ने क्यों भागवत बनाया, किस स्थान में बनाया ? जो शुक ने परीक्षित को सुनाया है ॥

समीक्षा-यह प्रश्नोत्तर व्यासमुख से निकलना और फिर भी भागवत के अन्तर्गत होना सर्वथा ही बुद्धि को चकाता है ।

९-आगे अ० ४ में-

दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया

परिदधुर्न सुतस्य चित्रम्। तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ
जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा नतु सुतस्य विविक्तदृष्टेः॥५॥

जब कि व्यास जी के सामने स्त्रियों ने पर्दा किया और शुकदेव जी नग्न आये तब से किसी स्त्री ने पर्दा न किया तब व्यास जी ने यह भेद स्त्रियों से पूछा तो उत्तर मिला कि तुम स्त्री पुरुष भाव को जानते हो परन्तु शुकदेव नहीं जानते ॥

समीक्षा-देवीभागवत अ० १९ स्कन्ध १ में स्पष्ट लिखा है कि शुकदेव जी का पीवरी से विवाह हुआ, ४ पुत्र हुये, एक कन्या। और यहां ी पुरुष भाव की अज्ञता बताना ही बताता है कि पुराण किसी एक के बनाये नहीं। देवीभागवत के कर्त्ता ने या तो श्रीभागवत न देखा हो, या भागवतकर्त्ता ने देवीभागवत नहीं देखा हो, यही ज्ञात होता है ॥

१०-शौनक पूछते हैं कि शुकदेव जी तो गृहस्थोंमें गोदोहन मात्र ही ठहरते थे, अधिक नहीं, फिर किस प्रकार सात दिन कथा कही। सूत जी कहते हैं कि कलियुग के आगमन को जान कर व्यास जी ने एक वेद को चार भाग में कर दिया। इतिहास पुराण भी बनाये ॥

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ २४ ॥

स्त्री शूद्रों को वेदत्रयी नहीं सुनानी, इस लिये कृपा करके-

इतिभारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५ ॥

मुनि ने भारत बनाया ॥ २५ ॥ तब भी चित्त प्रसन्न न हुआ। व्यास जी खिन्नचित्त बैठे थे, तब नारद जी आये। अ० ६ तक अपना पूर्वजन्मादि तथा भक्ति का वृत्त कहा है। तब फिर शौनक पूछते हैं कि फिर क्या हुआ। सूत जी ने कहा कि फिर सरस्वती तट पर भागवत बनाया, शुकदेव को पढ़ाया। यह अ० ७ श्लो० ११ तक कथा है। आगे भारत की कथा बताई है कि परीक्षित का जन्मादि कैसे हुआ ॥

समीक्षा—भला यह सूत शौनक संवाद जिस में हो, वह व्यासकृत ग्रन्थ कैसे होगा? फिर भी शुकदेव की परलोकगमनकथा तो शान्तिपर्व में भीष्म जी सुना चुके, यह भागवत कृष्ण के जन्म से बहुत पीछे स्वयं बनाने का प्रमाण देता है। फिर शुकदेव पढ़ने को कहां से आगये? गो दोहन मात्र का उत्तर नहीं

क्योंकि भागवत बहुत बड़ा ग्रन्थ है, इस के प्रतिश्लोक की तो क्या अध्याय २ की भी समालोचना कीजाय तो बहुत पोथा बन जायगा। इसलिये

प्रतिस्कन्ध में से कुछ २ समालोचना करने का विचार है । पाठक क्षमा करें ॥
११-अ० १५ में अर्जुन ने कृष्णकुल यादवों का नाश कहते हुवे कहा है कि-

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ।
अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥२३॥

अर्थात मद्य पीकर बेहोश होगये एक दूसरे से लड़कर ४ । ५ बाक़ी रहे । जैसे छोटी मछली को बड़ी खाती है ऐसे ही दुर्बलों को सबलों ने मारा । यह सब कृष्ण की ही इच्छा से हुवा लिखा है ॥

समीक्षा—क्या कृष्णकुल की कीर्त्ति दर्शाई है ? प्रथम तौ कृष्ण जैसे महापुरुष के सत्संगी भी मद्य नहीं पी सक्ते, फिर कृष्ण की इच्छा से लिखना वाममार्ग की कथा ही जान पड़ती है । क्योंकि वैष्णव (कृष्ण के भक्त-अनुयायी) मद्य को छूने में भी महापाप समझते हैं ॥

१२—श्रीकृष्ण के परंधाम के पीछे कलियुग आगया, इस बात की परीक्षा युधिष्ठिर ने इस प्रकार की । यथा—

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुःकलिरन्ववर्त्तत ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥

अर्थात् श्रीकृष्ण के पीछे उसी दिन से अधर्म के चिह्न देख कलियुग आगया ॥ ३६ ॥ क्योंकि नगर हस्तिनापुर में, राज्य भारतवर्ष में और अपने घर में लोभ झूंठ कुटिलता हिंसादि अधर्म को युधिष्ठिर ने देखा ॥

समीक्षा—क्या उस दिन से पहिले मद्यपान कृष्णकुल में और अपना असत्य युद्ध में तथा द्यून (जुवा) जिस की बदौलत बन २ फिरे, यह पाप नहीं हुवे । और इस के पीछे किस २ ने क्या २ पाप किये, वा युधिष्ठिर ने क्या २ पाप किया, सो कुछ भी नहीं लिखा । इस के उपरान्त उत्तरखण्ड को चला जाना बताया है कि ५ भाई उत्तरखण्ड को गये । वहां भी लिखा है कि:-

कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥

अधर्म के मित्र कलियुग से पृथ्वी की प्रजा को लुटे देखते चले गये।

१३—इस के पीछे अ० १६ में परीक्षित ने "उत्तर" की कन्या "इरावती" से चार पुत्र उत्पन्न किये। बड़ा "जनमेजय" था, तीन अश्वमेध यज्ञ किये। यथा—

आजुहावाश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान्।
शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ॥ ३ ॥

अर्थ—कृपाचार्य को गुरु बनाया और गङ्गा पर बड़ी दक्षिणा से तीन अश्वमेध किये जिन में देवता आंखों सामने आये॥

समीक्षा—अब कहां गया पौराणिकों का जेवते कवच रूप श्लोक? कि—

"अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥"

अर्थ—अश्वमेध १, गोमेध २, संन्यास ३, श्राद्ध में मांस ४, देवर से पुत्र की उत्पत्ति ५, यह पांच बात कलियुग में वर्जित हैं॥

राजा परीक्षित और कृपाचार्य की कृपा से यह बनावटी काग़ज़ी कवच टूटा जाता है। क्योंकि इन्हों ने कलियुग में ही "अश्वमेध" जो उक्त श्लोक में वर्जित था, कर डाला!!!

१४—आगे अ० १६ श्लोक ४ में कहा है कि:—

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित्।
नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥

अर्थात् किसी समय राजा के रूप में शूद्र को गौ का जोड़ा मारते कलियुग को बलपूर्वक राजा परीक्षित ने निग्रह किया॥

इस से आगे शौनक ने प्रश्न किया है कि यह गोमिथुन कौन था? शूद्र नृपरूप कौन था? इत्यादि २। इस के उत्तर में सूत जी ने कहा है कि वह कलियुग ही नृप रूप धर कर शूद्र था, गौ पृथ्वी थी॥

समीक्षा—ऐसे लेखों से ही भ्रान्ति पड़ती है। यदि पौराणिकजन इस का अर्थ ऐसे समझें जैसे श्री वेंकटेश्वर समाचार ने भारतदेश और कांग्रेस की नराकृति छापी हैं, अथवा इसी समाचार ने एक वार भारत को भूखा नराकृति और उस पर एक अंग्रेज़ को रुपये का बोझा लादते दिखाया था, ऐसे ही यह पृथ्वी की कल्पना की गई हो तो सम्भव है। जैसे भारतवर्ष वा कांग्रेस जनसमुदाय है, न कि एक नराकृति तो भी समझाने दर्शाने को यह प्रपञ्च है॥

अंग्रेज़ी पेपरों में ऐसा ही होता है। परन्तु पुराणपाठी अभी ऐसा नहीं मानते हैं। एक दिन ऐसा आवेगा जब सब पौराणिक लोगों को "पुराणों में प्रक्षिप्त भाग कल्पितगाथा अलंकार कथा हैं, यथार्थ इतिहास बहुत न्यून हैं" ऐसा मानना पड़ेगा॥

इसी अ० १६ श्लोक ११ से आगे यह वर्णन है कि राजा परीक्षित ने दिग्विजय किया और कृष्ण का नाम और अर्जुन की प्रशंसा सर्वत्र श्रवण कर प्रसन्न हुआ। फिर पृथ्वी से भी भाषण हुआ। पृथ्वी ने अपना दुखड़ा रोकर सुनाया॥

समीक्षा-जब श्रीकृष्ण नामादि सर्वत्र सुन राजा प्रसन्न था तब क्या उसे अपने राज्य की कुछ ख़बर नहीं थी कि पृथ्वी पर भार हो रहा है या पृथ्वी झूंठ मूठ ही भारोई, यह पता भागवतकर्त्ता को ही होगा॥

अध्याय १७ में वही अलङ्कार है, जो पूर्व वर्णित है॥

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत्।
दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम्॥ १॥

समीक्षा-भला इस श्लोक में और अ० १६ के ४ में क्या अन्तर है? वहां "नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा" पाठ है। आगे—

वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम्॥ २॥

अभी धर्म को एकपाद कहने लगे। क्या श्रीकृष्ण जी भी चारों पाद धर्म के पूर्ण करने में समर्थ न हुवे? यदि श्रीकृष्ण जी ने पूर्ण कर दिये थे तो ३ पादहीन धर्म बहुत लघु समय में ही होगया और राजा परीक्षित को एक पाद रहने पर ही ख़बर मिली, यह बड़ी बेख़बरी की बात है? यदि युगानुसार एक पाद धर्म का प्रतियुग में टूटता ही है तौभी जब द्वापरान्त में भी श्रीकृष्ण जी ही धर्मपाद पूर्ण करने में असमर्थ रहे तब राजा परीक्षित बेचारे क्या करसकते और आज कल की सनातनधर्मसभा बेचारी क्या धर्मरक्षा कर सकेंगी?. क्योंकि कलियुग में तो धर्मपाद खण्डित होने ही हैं। इसी अ० १७ में लिखा है कि-

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्त्तिताः।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव॥ २३॥

इस में धर्म के तप १, शौच २, दया ३ और सत्य ४ पाद बताये हैं। क्या श्रीकृष्ण के समय तप, शौच, दया नहीं थे ? केवल सत्य ही था ? यदि नहीं थे तो व्यासादिने तप कैसे किया ?

आगे कलियुग को राजा परीक्षित से बातें हुईं और कम्पमान होकर कलि ने बसने को स्थान मांगे, राजा ने ५ स्थान निर्देश किये हैं। यथा—

द्यूतं पानं स्त्रियःसूना यत्राऽधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३७ ॥
पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥ ३८ ॥

अर्थात् जुवे में असत्य, मद्य में मद, स्त्रियों में काम, हूना में रजोगुण और सुवर्ण में वैर, यह यथासंख्य से (श्रीधरी टीका का मत है) कलियुग के स्थान परीक्षित ने बताये हैं ॥ ३८ ॥

इसी श्लोक की टीका में बताया गया है कि द्वादश स्कन्ध में कलियुग के धर्म के अन्यान्य पादों का वर्णन है। यथा—

सत्यं दया तपो दानमितिपादा विभो नृप ।

तथाच-

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।
अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसन्तोषविग्रहैः ॥

अर्थात् १ सत्य, २ दया, ३ तप, ४ दान; यह धर्म के ४ पाद और त्रेतादि युगों में धीरे धीरे एक एक पाद धर्म घटता जाता है। अधर्म के पाद १ मिथ्याभाषण, २ हिंसा, ३ असन्तोष, ४ विग्रह=कलह; उत्पन्न होते जाते हैं। पाठक स्वयं विचार लें कि यहां युगों का यथासंख्य कैसा दुःखसागर में पौराणिक पक्ष को गिराता है॥ मूल में तप प्रथम सत्ययुग में नष्ट होता है, टीका में तप की तीसरी संख्या है। मूल में दया का तीसरा नम्बर, टीका में दूसरा। मूल में सत्य का चौथा नम्बर है, यहां टीका में प्रथम। मूल में शौच का २ नम्बर है, टीका में पता भी नहीं। मूल में विग्रह=कल का पता भी नहीं। यहां टीका ने द्वादशस्कन्ध के आधार का इशारा किया है। आगे परीक्षित ने धर्म के नष्टपाद तीनों पूर्व किये। यथा—

वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ।
प्रतिसन्दध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४१ ॥

यहीं यह भी लिखा है कि परीक्षित से कलियुग डरता रहा, अपना प्रभाव न कर सका ॥

समीक्षा-यदि राजा ने पूर्ण कर दिये तो श्रीकृष्ण से भी बढ़कर रहा, तथापि अभी आगे स्वयं अपराधी बना जाता है—

अ० १८ में लिखा है कि राजा मृगयार्थ गया था, भूखप्यास से व्याकुल, शमीक ऋषि के आश्रम में आया, मुनि समाधिस्थ बैठे थे, राजा क्रोधित हो मरा सर्प उनके गले में डाल कर चला आया। मुनिपुत्र शृङ्गी * ने कौशिकी नदी के जल को छूकर शाप दिया कि आज से सातवें दिन उसे तक्षक काटेगा, जिस ने मेरे पिता के गले में सर्प मेरा ॥

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।
दंक्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥३७॥

पिता के पास आकर शृङ्गी रोया, पिता ने समाधि खोल पूछा तो सब वृत्त शाप का कहा, पिता ने सुन दुःख माना और राजा के पास अपना शिष्य भेज दिया कि तुम्हें शाप हो चुका है, सावधान होजाओ ॥

अ० १९ में लिखा है कि राजा सुन पछताया और—

अद्यैव राज्यं बलमद्युकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलाऽनलो मे ।
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मे भूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ २॥

अर्थात् आज ही राज्य, सेना, मेरा कोश, ब्रह्म शाप से फूंक जाओ परन्तु तौभी मेरी बुद्धि ब्राह्मण देवता गौ के प्रति ऐसी कुत्सित न हो ॥

सर्वस्व त्याग गङ्गा तटपर † चलागया ॥

नोट-* शृङ्गी ऋषि का आश्रम परीक्षितगढ़ में अभी बना हुवा है, एक झाड़ी है, यहां सर्प भी बहुत हैं परन्तु कौशिकी नदी नहीं।

† यह स्थान भी परीक्षितगढ़ से ३५ मील ही है। मुज़फ़रनगर के ज़िले में "शुकताल" नाम से प्रसिद्ध है। इस के विरुद्ध महाभारत आदिपर्व अ० ५२ में लिखा है कि घरपर ही एक खम्भ में स्थान बनवाकर रहा, वैद्य औषधों का संग्रह किया, राजकार्य करता रहा ॥

राजा के पास अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, भरद्वाज, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, कुम्भयोनि, द्वैपायन, नारद आदि २ आये ॥

तदनन्तर व्यासपुत्र शुक का आगमन भी लिखा है। यथा—

तत्रागमद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतस्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥

इसी पर टीका ने लिखा है कि:—

तेषु यागयोगतपोदानादिविवदमानेषुसत्सु०

अर्थात् सब ऋषि यज्ञ, योग, तप, दानादिका विवाद राजा से कर रहे थे' शुकागमन में श्लोक २६ में इन की १६ वर्ष की आयु बताई है और सुगात्रता भी बहुत वर्णित है, परन्तु इस को १६ वर्ष की आयु पर ही सन्देह है कि क्या शुकदेव जी के स्वर्ग से आने का तो वर्णन नहीं ? क्योंकि दैववर्ष बहुत बड़ा होता है, मनुष्यों के १ वर्ष का देवों का अहोरात्र होता है। तथा पूर्वश्लोक २५ में "अलक्ष्यलिङ्गः" भी लिखा है, परन्तु टीका ने उसे आश्रमलिङ्ग बताकर टाल दिया है। हम नहीं कह सक्ते कि १६ वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्याश्रम का चिन्ह क्यों शुकदेव जी को नहीं भाता था। उन को आगे दिगम्बर कहकर पुकारा है। यह भी कहा है कि स्त्री पुरुष के भेद को शुक नहीं जानते थे परन्तु महाभारत व देवीभागवत में शुकदेव जी की स्त्री पुत्र पुत्रियों का भी वर्णन है। राजा ने बहुत सी स्तुति की है और यह भी लिखा है कि शुकागमन के समय सब महर्षि राजर्षि सशोक खड़े हो गये थे और फिर राजा ने यह कहा है कि भगवन् ! मृत्यु समय मनुष्य का क्या कर्तव्य है ? जो श्रोतव्य, जाप्य, स्मर्तव्य, भजनीय बातें हों सो कहिये। यद्यपि आप कहीं गोदोहन मात्र भी नहीं ठहरते हैं। इति ॥

समीक्षा—प्रथमस्कन्ध सप्ताह का अङ्क इस हिसाब से कभी भी नहीं सिद्ध होता क्योंकि अभी तक तो परीक्षित को एक अक्षर भी शुकमुख से सुनने को नहीं मिला है फिर "शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्" कहां रहा और प्रथम स्कन्ध व्यासप्रोक्त भी नहीं हो सक्ता, इस के बाद परीक्षित सुनेगा। सप्ताह बांचने वाले पण्डित वृथा ही प्रथमस्कन्ध भी सात दिनों में सुनाते हैं ॥

इति प्रथमस्कन्धसमीक्षा

अथ द्वितीयस्कन्धसमीक्षा

पाठकगण ! माहात्म्य और प्रथमस्कन्ध की भी समीक्षा में बहुत विस्तार हो गया है आगे हम आप का समय कम लगाने की इच्छा से अधिक संक्षेप करेंगे॥

श्री शुकदेव जी ने राजा की प्रशंसा करके कहा कि अभय की इच्छा से ईश्वर का भजन कीर्त्तन करना सुनना उत्तम है, यही सांख्य योग का आशय है कि इन्द्रियों को वश कर ब्रह्मोपासना करनी चाहिये॥

श्लोक १२। १३ में कहा है कि मोक्षार्थ एक मुहूर्त्त भी बहुत है, खट्वाङ्ग राजा एक मुहूर्त्त में ही हरिपद पागया था। तेरे लिये तो जीवन के सात दिन हैं। अन्त समय पुरुष को संन्यास लेना ही उत्तम है। मन को जीतना ही चाहिये अर्थात् मन को तमोगुण रजोगुण से पृथक् करना चाहिये॥

यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः।
आशु सम्पद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥२१॥

परीक्षित ने प्रश्न किया कि किस प्रकार धारणा शक्ति निर्मल हो? शुकदेव जी बोले कि:-आसन, श्वास, संग, और इन्द्रियां जीतनी चाहियें यथाः-

जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेन्द्रियः॥

आगे भगवान् के विराट स्वरूप का वर्णन है, जिस में समस्त संसार ब्रह्म के अन्तर्गत बताया है। नदी, पर्वत, ग्रह, उपग्रह, जीव, जन्तु सभी ब्रह्म के गर्भ (भीतर) रहते हैं। इत्यादि॥

द्वितीयाध्याय के श्लोक ७ में कहा है कि-

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात्।

अर्थात् सर्वव्यापक परमेश्वर की चिन्ता को अनादर कर सिवाय पशुओं के और कौन असन्मार्ग में फंसता है, अर्थात् जो फंसता है वह पशु है। आगे श्लोक १४ से स्पष्ट कहा है कि जब तक पराबर विश्वेश्वर (अर्थात् पूर्वोक्त विराट्स्वरूप में) भक्तियोग नहीं होता तब तक स्थिर सुख नहीं होता। क्योंकि

न यत्रकालोऽनिमिषांपरः प्रभुः कुतोनुदेवाः जगतां यईशिरे।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् १०

अर्थात् वह कालादि से भी परे है उस में त्रिगुण, विकारादि नहीं हैं॥

अ० ३ के आरम्भ में ही श्रीशुकदेव जी ने कह दिया है कि:-

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ।
नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥

अर्थात् हे राजन् ! जो तुमने मरते समय के उपयोगी प्रश्न किया था सो तुम से कह दिया । बस यहीं भागवत की समाप्ति होनी चाहिये थी ॥

आगे श्लोक २ । १० तक यह कथा है कि ब्रह्मतेज की कामना से ब्रह्मा का, इन्द्रियकामी इन्द्र का, सन्तानार्थी प्रजापतियों का, लक्ष्मी कामना से मायादेवी का, तेजार्थी सूर्य का, वसु=धनार्थी वसुवों का, बलार्थी रुद्रों का, अन्नार्थी अदिति का, स्वर्गार्थी देवतों का, राज्यार्थी विश्वेदेवाओं का पूजन करे, इत्यादि । पृथक् २ प्राप्त्यर्थ पृथक् २ देवतों का वर्णन लिखा है ॥

समीक्षा-इस विषय का न राजा ने प्रश्न किया, न शुकदेव जी ऐसे अप्रासंगिक बात करने वाले हो सकते हैं, न यह मृत्युसमय किसी को रुचिकर हो सकता है, न वेदानुकूल है, न राजा को इस के सुनने की आवश्यकता ही थी ॥

आगे शौनक कहते हैं कि हे सूत जी ! राजा ने यह सुन, फिर शुकदेव जी से क्या पूछा ? १३ से २५ श्लोक तक राजा की भक्ति आदि के प्रशंसावाक्य हैं, अन्य कुछ नहीं । अ० ४ के ५ वें श्लोक में फिर राजा ने सृष्टि की उत्पत्ति का प्रश्न किया है । शुकदेव जी ने नारद ब्रह्मा का संवाद सुनाया और पञ्चतत्त्वों की उत्पत्ति उत्तमता से समझाकर भगवान् के विराट् स्वरूप का वर्णन अलङ्कार रूप से पुरुषसूक्तवत् किया । अ० ६ में सब की उत्पत्ति ब्रह्म से बताई है, कहीं कमल वा पानी या अपने से संसार की उत्पत्ति नहीं बताई, किन्तु यह लिखा है कि:-

अहं भवान् भवश्चैव तइमे मुनयोऽग्रजाः ।
सुरासुरनरानागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ १२ ॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ।
पशवः पितरः सिद्धा विद्याधाश्चारणा द्रुमाः ॥१३॥

इत्यादि श्लोकों में पुरुषसूक्त के तुल्य ही नहीं, बल्कि उस के वाक्य के वाक्य उद्धृत हैं । यथा-"[illegible]" इत्यादि श्लोक १९ में ॥

तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ २६ ॥
ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ।
अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २७ ॥

इन श्लोकों में सब का उत्पादक, सब का उपास्यदेव एक ब्रह्म वर्णित है, परन्तु श्लोक ३० से फिर ब्रह्मा ही कहते हैं कि:-

सृजामि तन्नियुक्तोहं हरो हरति तद्वशः ।
त्रिश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३० ॥

यदि इस श्लोक को पृथक् कर दिया जाय तो इस समस्त अध्याय में गन्धमात्र भी ब्रह्मा से सृष्टि की उत्पत्ति का लेश नहीं है। सो यह श्लोक भी यथार्थ में व्यर्थ ही है, क्योंकि श्लोक १२ से आगे बहुत ही स्पष्ट सब की उत्पत्ति ब्रह्म से बता चुके हैं, ब्रह्मा की स्वयं अपनी, नारद की, अन्य नर, नाग, पशु पक्षियों की भी उत्पत्ति बता चुके हैं, फिर अप्रासङ्गिक बात ब्रह्मा के मुख को शोभित नहीं करती। न ब्रह्मा ने कहा होगा ॥

आगे ब्रह्मा ने उक्त विराट् की स्तुति की है, उस से भी स्पष्ट सिद्ध है कि ब्रह्मा स्वयं ब्रह्म नहीं बनते, अपने को जीव समझते हैं। ब्रह्मा ने स्पष्ट कहा है कि:-

नान्यद्भगवतः किञ्चिद्वाच्यं सदसदात्मकम् ॥ ३१ ॥
न भारती मेङ्ग! मृषोपलक्ष्यते नवै क्वचिन्मे मनसो मृषागतिः।

अर्थात् हे नारद! जो तुम ने पूछा, वह हम ने सत्य २ कहा है, मेरी बुद्धि मृषा=असत्य नहीं देखती, मेरे मन की गति असत्यार्थ पर नहीं दौड़ती, यह ही सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है, अन्य प्रकार से नहीं है ॥

समीक्षा-अब जल से कमल, कमल से ब्रह्मा, यह कैसे सत्य हो सकता है। अध्याय ३ में २४ अवतारों का वर्णन है, उस की समालोचना हम प्रथमस्कन्ध में ही कर आये हैं, अतः यहां विशेष नहीं लिखते, परन्तु झूंठी बात याद नहीं रहती है, यह अवश्य दिखावेंगे ॥

परस्पर विरोध देखिये:-

द्वितीयस्कन्ध में-	प्रथमस्कन्ध में	द्वितीयस्कन्ध में-	प्रथमस्कन्ध में-
१ वाराह	१ पुरुष	१३ नृसिंह	१३ मोहनी
२ यज्ञ	२ वराह	१४ हरि	१४ नृसिंह
३ कपिल	३ नारद	१५ वामन	१५ वामन
४ दत्तात्रेय	४ नरनारायण	१६ हंस	१६ परशुराम
५ कुमार	५ कपिल	१७ मनु	१७ व्यास
६ नरनारायण	६ दत्तात्रेय	१८ धन्वन्तरि	१८ रामचन्द्र
७ ध्रुव	७ यज्ञ	१९ परशुराम	१९ कृष्ण
८ पृथु	८ ऋषभ	२० राम	२० बलदेव
९ ऋषभ	९ पृथु	२१ कृष्ण	२१ बुद्ध
१० हयग्रीव	१० मत्स्य	२२ व्यास	२२ कल्कि
११ मत्स्य	११ कूर्म	२३ बुद्ध	प्रथमस्कन्ध में २२ ही
१२ कूर्म	१२ धन्वन्तरि	२४ कल्कि	अवतारों का लेख है ।

द्वितीयस्कन्ध में संख्या में आगे पीछे के अतिरिक्त पुरुष, नारद और मोहनी अवतार नहीं लिखे । प्रथम में कुमार, ध्रुव, हरि, हंस और मनु पांच का वर्णन नहीं है । हम नहीं कह सकते कि यह क्या बात है जो अवतारों की संख्या भी बेसिलसिले व कुछ की कुछ बताई जावे ॥

अब २४ अवतार न कह कर यदि २१ अवतार मानें तब ठीक लगे । हमारी समझ में अधिकगुणधारी पराक्रमी पुरुषों को अवतार मानना पुराणों के समय में मतभेद से था । कोई किसी को उत्कृष्ट गुणी मानते थे, कोई किसी को और मत्स्यकूर्म वराहादि के चिह्न उन महात्माओं के होते होंगे जैसे आज भारत गवर्नमेन्ट का चिह्न दो शेरों का छपता है, शायद इसी प्रकार उन्हों ने उक्त जीवों के चिन्ह रक्खे हैं । परमेश्वर का जन्म लेना ही अवतार मानते होते तो नारद जी को कैसे अवतार मानते, जब कि उन का पूर्व जन्म में दासीपुत्रत्व और ज्ञानप्राप्ति का वर्णन भी लिख चुके हैं और स्पष्ट ही विष्णु से प्रश्न भी लिखे हैं । बस जिन लोगों को नारद का कृत्य उत्तम प्रतीत हुवा, वेदमार्गोद्धारक ज्ञात पड़ा, वह पुराणों में नारद को भी अवतारों में गिनने

लगे। अध्याय ८ में परीक्षित ने ब्रह्मा का कमल से उत्पन्न होना, ब्रह्म, माया आदि और अवतारकथा, युगों के धर्म, वेद, उपवेद, इतिहास पुराणों का धर्म पूछा है। अध्याय ९ में श्रीशुकदेव जी ने उत्तर दिया है। अ० ८ के ही अन्त में निम्न श्लोक हैं॥ सूतउवाच—

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते॥ २८॥
यद्यत्परीक्षिद्वृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति। *
आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ २९॥

अर्थात् वेदसम्मित पुराण भागवत शुकदेव जी सुनाने लगे, और जो २ राजा ने प्रश्न किये उन का समाधान करते रहे। और ४ श्लोक की भागवत जो प्रसिद्ध है, वह यहीं वर्णित है। यथाः—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥३२॥
ऋतेर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥३३॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ३४॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥ ३५॥

ब्रह्मा के प्रति भगवान् की उक्ति है॥

अ० १० में सृष्टि की उत्पत्ति, अनेक योनियों का प्रादुर्भाव मनुस्मृति के समान अण्ड से वर्णित है। नाभि, कमल और ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है। इस से सिद्ध है कि यह पुराकालीन बात नहीं है कि नाभिकमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा से पुत्रोत्पत्ति या पृथिवीतल और सब योनियों की उत्पत्ति हुई किन्तु वहां स्पष्ट है किः—

* श्लोक २९ में परीक्षित शब्द का हलन्त होना चिन्त्य है॥

प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ।
सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥

शौनक ने श्लोक ४८ में प्रश्न किया कि हे सूत जी ! विदुर मैत्रेय का संवाद कहिये, जो तीर्थयात्रा में हुवा था ॥

इस पर सूत जी ने कहा कि राजा परीक्षित ने भी शुकदेव जी से प्रश्न किया था । जो वृत्त शुकने परीक्षित को सुनाया, वह तुम भी सुनो । इस से बिल्कुल ही स्पष्ट है कि यह वह भागवत नहीं है कि जो शुकदेव द्वारा राजा ने सुनी थी । यह तो शौनक के, जो जी में आता है, वह बूझते हैं और सूत जी उस का उत्तर देते समय अपनी याददाश्त सुनाते हैं, जो शुक परीक्षित संवाद में याद आजाता है, उसे भी सुना देते हैं ॥

इति द्वितीयस्कन्धसमीक्षा

—*—

तृतीयस्कन्ध की समीक्षा के प्रथम ही हम एक बात और भी विचित्र ज्ञात कराते हैं कि आज हमने भागवत की भाषाटीका (जो भारतधर्म महामण्डल द्वारा पदकप्राप्त, महामहोपदेशक, पं० ज्वालाप्रसाद जी की शोधित है) देखी; जिस के आरम्भ में ही लिखा है कि:-

पहिले ब्रह्मा भगवान् का संवाद संक्षेप से कह्यो है फेर शेष जी की कही भागवत सुन्दर विस्तार से कहैं हैं ॥ दो प्रकार से भागवत सम्प्रदाय की प्रवृत्ति है, एक तो संक्षेप से श्रीनारायण ब्रह्मा के द्वारा और विस्तार से शेष, सनत्कुमार, सांख्यायन आदि द्वारा भई, तहां द्वितीयस्कन्ध में श्रीनारायण ब्रह्मा के संवाद से संक्षेप से " अहमेवासमेवाग्रे " इत्यादि करके चतुः श्लोकी भागवत कही । सोही ब्रह्मा नारद के संवाद में दश लक्षण से कुछ विस्तार से कही, सोही शेष जी की कही, अब अतिविस्तार से कहिवेको तृतीयस्कन्ध आदि को आरम्भ है, तहां तृतीय में पहिले विदुर मैत्रेय को सङ्गम हुवो । इत्यादि ॥

१-भागवत ब्रह्मा और नारायण, २-ब्रह्मा और नारद, ३-शेष जी की इन में शुक परीक्षित संवाद की १ भी नहीं । न व्यास जी की भागवत का नाम निशान है ॥

इस तृतीयस्कन्ध में एक अद्भुत बात है कि द्वितीय के अन्त में तो शौनक ने सूत से अप्रासंगिक प्रश्न किया कि विदुर का तीर्थयात्रा करते २ मैत्रेय से क्या संवाद हुवा ? सूत जी ने कहा कि परीक्षित के बूझने पर जो शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को उत्तर दिया वही उत्तर हम तुम को सुनाते हैं ॥

अब तृतीयस्कन्ध में " शुक उवाच" प्रथम ही है । शुकदेव कहते हैं कि–

एवमेव पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल ।
क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥

अर्थात् हे राजन् ! इसी प्रकार घर त्याग, वन जाय विदुर ने मैत्रेय से बूझा था ॥

समीक्षा–अभी राजा का कोई प्रश्न ही नहीं, फिर इसी प्रकार पूछा था, यह बात कैसी असङ्गत है । आगे राजोवाच–

कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः ।
कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ! ॥ २ ॥

अर्थात् विदुर मैत्रेय का संवाद कब कहां हुवा है ? यह हम से वर्णन कीजिये । यह प्रश्न पीछे, उत्तर पहिले, कैसे बन सकता है ॥

भा० स्कं० अ १ के ४४ वें श्लोक में अद्भुत कथा है ॥

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्त्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।
नचान्यथा कोऽर्हति देहयोगं परोगुणानामुत कर्मतन्त्रम् ४४

अर्थ–अजन्मा का जन्म पापी पुरुषों के नाशार्थ और अकर्मा जगदीश के कर्म साधु पुरुषों के ग्रहण करने के लिये होते हैं ॥ क्योंकि जब कर्मरहित जीव ही मोक्ष पाकर जन्म मरण से रहित हो जाता है तब निर्गुण स्वरूप परमात्मा शरीर बन्धन में आना असम्भव है ॥

समीक्षा–यहां अजन्मा नाम ही नहीं हो सकेगा, यदि जन्म लेगा, और उसको अकर्मा कभी नहीं कह सकते जो मानुष कर्म करेगा तथा कृष्णचरित्रों (जो दशम में लिखे हैं) को तो भागवती लोग सभ्य सभा में सत्पुरुषों के ग्रहणीय नहीं बतावेंगे क्योंकि नृत्य करना और एक पुरुष की १६००० रानी होना कौन स्वीकृत करेगा तथा यह बात भी अद्भुत ही स्पष्ट है कि जब निमित्त

से बद्ध जीव की भी मुक्ति से पुनरावृत्ति पौराणिक नहीं मानते, फिर स्वभाव से मुक्त जगदीश का जन्म कब सम्भव है। आगे अ० २ में श्री कृष्ण के मृत्यु समाचार को रोकर उद्धव कहते हैं कि–

दुर्भगो बत लोकोयं यदवो नितरामपि।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥ ८ ॥

उद्धव जी विदुर से कहते हैं कि यह लोक (दुनिया) भाग्यहीन है और यादव (श्रीकृष्ण के कुल वाले) बिलकुल ही भाग्यहीन हैं क्योंकि जो पास बसते हुवे भी श्रीकृष्ण को नहीं जान सके कि यह ब्रह्म है, जैसे चन्द्रमा को मछली नहीं जानतीं ॥

इस पर श्रीधरीटीका कहती है कि:–

ननु शोचन्नाह दुर्भगो भाग्यहीनः। ये सह वसन्तोपि श्री हरिरयमिति न विदुः यथा क्षीरसमुद्रे जातमुडुपं तदा तत्रत्या मीनाः केवलं कमनीयः कश्चिज्जलचर इत्येवं विदुः नत्वमृतमय इति, तद्वत्। यद्वा जले प्रतिविम्बितं चन्द्रं यथेति ॥

अर्थात उद्धवजी सोचते हुवे कहते हैं कि जैसे जल के ही वासी मीन (मछली) क्षीर समुद्र में जन्म पाये चन्द्रमा को यही जानते रहे कि यह कोई सुन्दर जलजीव है, अमृतमय न जाना इसी प्रकार लोक और यदुवों ने श्रीकृष्ण को साथ क्रीड़ादि करते हुवे भी ब्रह्म न जाना ॥

इस से तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के जीवन समय में इन को कोई अवतार नहीं मानता था। श्लोक १४ में रासलीला और गोपियों की भक्ति दर्शाई है। आगे—

दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोपि सिद्धिः।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥

उद्धवजी कहते हैं कि हे विदुर ! आप लोगों ने राजसूय में देखा कि शिशुपाल ने श्रीकृष्ण महाराज को कितने अपशब्द कहे परन्तु द्वेष से भी जो-गति शिशुपाल ने पाई उस गति के लिये योगी जन योग मार्ग से भी तरसते हैं। उस कृष्ण के विरह को कौन सह सकेगा ॥

समीक्षा–हम नहीं जानते कि जहां यह बताया जाता है कि अत्युग्र पापियों के वधार्थ अवतार होते हैं, वहां यह कैसे सम्भव है कि उन पापियों को मोक्ष प्राप्त होता है। अतिपाप का प्रायश्चित्त भगवान् के हाथ से मारने मात्र से होना कौनसी फ़िलासफ़ी है। आगे २० वें श्लोक में केवल कृष्ण के ही नहीं अर्जुन के मारे लोगों की भी मुक्ति बताई है। श्लोक २३ में पूतना, जो स्तन में ज़हर लगाय दूध पिलाने आई, उस को माता यशोदा के समान गति दी। कैद कपूर कपास सब एक ही भाव हुवा॥

ततोनन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्धि बिभ्यता।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्॥ २६॥

कंस के भय से पिताने नन्द के व्रज में पहुंचाये ११ वर्ष वहां ही गुप्त होरहे॥

समीक्षा–जब कि इसी अध्याय में पूतना का, कालिय का और बकासुर का वध, गोवर्द्धन उठाना और अनेक चरित्रों का वर्णन है, तब बाललीला में गुप्त बताना ग्रन्थकर्त्ता की? बाललीला ही नहीं तो क्या है॥

शरच्छशिकरैर्मृष्टम्मानयन् रजनीमुखम्।
गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः॥ ३४॥

शरद् के चन्द्रमा को रात्रिमुख ही जान, स्त्रियों के मण्डल के शोभित करने वाले कलपद गाते रमण करते थे॥ ३४॥

भला यह कोई प्रशंसित बात है क्या?

अध्याय ३ में–

सांदीपने सकृत् प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम्।
तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात्॥ २॥

शुकदेव जी कहते हैं कि सांदीपन ऋषि से एक वार ही सुनकर समस्त वेद पढ़ा और उस का मरा हुवा पुत्र पञ्चजन के पेट से ला दिया। यहां पुरानी किरानियों से भी बढ़ गये, मुर्दों को जिलाना ही नहीं है, बल्कि पेट में से ले आये जहां आहार का रस रक्त बनता है। श्लोक ३ में रुक्मिणीहरण की भी प्रशंसा की है। यहां गांधर्वविवाह बताया है परन्तु वहां राक्षस विवाह हुवा है, क्योंकि मार छीन करै तो गांधर्वविवाह नहीं कहाता है इसलिये आगे नाग्नजिती से स्वयंवर और सत्यभामा से विवाह लिखा है॥

और आगे ६। ७ में भौमासुर के रणवास में से अनेक राजकन्याओं से श्रीकृष्ण का विवाह वर्णित है ॥

आसां मुहूर्त्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ।
सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥
तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ।
एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥

अर्थात् सब का एक मुहूर्त्तमात्र में सामीप्य में पाणिग्रहण किया । एक २ में दश २ पुत्र आप जैसे उत्पन्न किये । भला एक कृष्ण यदि अवतार थे तो सब स्त्रियों में १० । १० निजतुल्यपुत्र होने पर शतशः कृष्ण भूमण्डल में होजाने चाहिये थे, फिर कृष्णभक्ति कैसी ? श्लोक १५ में कहा है कि मीठी मद्य (शराब) के मद से लाल लोचन हो विवाद कर परस्पर लड़ कर यादव मरेंगे। अ० ४ में फिर कहा है—

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ।
तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥

अर्थात् यादव वारुणी शराब पीकर बेहोश होगये, लड़ मरे ॥

समीक्षा—भला श्रीकृष्ण से महात्मा मद्य पीने का ज्ञान होते भी कुल रक्षार्थ उस के निवारण का उद्योग न कर सकें, यह कब सम्भव है ? फिर यहां तो कृष्ण की आज्ञा से मद्य पीना कहा है । इस समय में तो यादवों का सौत्रामणी यज्ञ भी न था । फिर भी मद्यपान का निषेध नहीं किया गया । इस से स्पष्ट है कि इस कथा के कर्त्ता मद्यपान को पाप नहीं समझते थे । इस पर भी पीछे अ० ३ श्लो० १९ में—

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ।
कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सख्यमास्थितः ॥ १९ ॥

इस में श्रीकृष्ण को लोक वेद पथगामी बताया है, फिर भी मद्यपान का उपदेश निज कुल को क्यों किया ? और भौमासुर की कन्या का स्त्री भाव से रखना व सब से भोगविलास करना भी यहीं वर्णित है, यह वेद मार्ग कहां गया ? । अ० ५ में स्पष्ट कहा है कि विदुर जी 'व्यासवीर्य' से हुवे हैं ॥

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ॥

अर्थात् मैत्रेय जी विदुर से कहते हैं कि आप व्यासवीर्य से (भुजिष्या दासी में) उत्पन्न हुवे हो। आगे ब्रह्मा, विष्णु, शिव को वैकारिक तत्त्वात्मक लिखा है ॥ श्लो० २३ से सृष्टि की उत्पत्ति लिखी है ॥ यथा-

भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ।
आत्मेच्छानुगतो वात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥
सवा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥

तथा च—

कामवृत्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥

इस पर टीका यह कहती है कि तासमय ये सर्वद्रष्टा ईश्वर सम्पूर्ण शक्ति से प्रकाशित होने पर भी इस वैभव को कोई देखने द्वारा न होने से और मायादिक शक्ति लीन होने से अपने को असत् सा मानते भये कि हम हैं सो यही पर कुछ नहीं हैं ॥२४॥ हे महाभाग ! तब सर्वद्रष्टा या ईश्वर की कार्यकारण रूपिणी ये माया नाम्नी महाशक्ति अनुसन्धानरूपा उत्पन्न होती भई, जासे समर्थ ईश्वर सब को रचते भये ॥ २५ ॥ गुणमयी काल की शक्ति से माया में पुरुषरूप करके वीर्यवान् वीर्य को धारण करते भये ॥ २६ ॥ कालप्रेरित अव्यक्त माया से महत्तत्त्व भयो, तमोगुण को नाशक विज्ञान आत्मा जीव के देह में स्थित होकर विश्व को प्रकाशित करतो भयो ॥ २७ ॥ सो जीव अंश गुण काल आत्मा भगवत् की दृष्टि के सामने या विश्व के रचबे की इच्छा करके जीवात्मा अपने आत्मा को रूपान्तर करते भये ॥ २८ ॥ महत्तत्त्व जब विकार को प्राप्त भयो, तब अहं तत्त्व भयो। कार्य कारण कर्त्ता जीव पञ्चभूत इन्द्रिय मनोमय होतो भयो ॥ २९ ॥ वह अहंकार, वैकारिक तैजस तामस भेद से तीन प्रकार का भयो, अहङ्कार विकार को प्राप्त भयो तब वैकारिक अहङ्कार से मन भयो ॥ ३० ॥ वैकारिक जो देवता भये उन से शब्दादिक गुण प्रकाशक होय हैं, रजःसत्वतमोमय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं (३१)

समीक्षा-यहां सृष्टि का किस प्रकार वर्णन किया है, जिस से श्लोक २५ में ईश्वर से मायाशक्ति की उत्पत्ति लिखी है । यह बाबा आदम से हव्वा के

पैदा होने की बात से मिलती है, इसी शाक्तमत से यवनों के कुरान में यह शिक्षा गई होगी ॥

फिर श्लोक ३१ में तत्त्वमय ब्रह्मा विष्णु शिव को बताना और कहीं इन को साक्षात् जगदीश बताना भी चिन्त्य है। यहां नाभि कमल, जल, सभी सूख गये जान पड़ते हैं ॥ आगे श्लोक ३४ में—

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३४ ॥

इत्यादि श्लोकों में "आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापः" इत्यादि अर्थ का वर्णन है। फिर–

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशयोगतः ।
नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाःप्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम्॥३८॥

अर्थात् इतने देवता ये जो पूर्व-वर्णित हैं, विष्णु की कला हैं। इन का सामर्थ्य नाना होने से सृष्टि रचने का न हुआ, तब हाथ जोड़ स्तुति करने लगे। भला आकाश के हाथ कहां से आये ? अब से ब्रह्मा विष्णु शिव को साक्षात् भगवान् नहीं कहना चाहिये ॥

अ० ८ में शुकदेव जी कहते हैं कि मैत्रेय ने कहा कि—

प्रवर्त्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद् भगवान्ऋषिभ्यः ।

अर्थात् वह भागवत कहता हूं जो साक्षात् शेष भगवान् ने ऋषियों से कहा था। सनत्कुमार सत्यलोक से गङ्गा जी में बहते २ भीगे हुवे पाताल में पहुंचे थे (अ० ८ । ५)

एक समय शेष जी ने सनत्कुमारों से भागवत कही थी, वही भागवत "सांख्यायन" मुनि को सनत्कुमारों ने सुनाई। सांख्यायन ने पराशर और बृहस्पति हमारे गुरुओं को सुनाई, गुरु जी ने मुझे सुनाई, मैं आप को सुनाता हूं॥

यहां भाषाटीका में लिखा है कि पिता को राक्षस द्वारा भक्षित सुन, पराशर जी राक्षस का वध कर यज्ञ में प्रवृत्त हुवे, तब वशिष्ठ जी ने रोके और पुलस्त्य ने अपनी सन्तति की रक्षा की, प्रसन्नता में पराशर को वर दिया कि तुम पुराणवक्ता होगे ॥

समीक्षा—यह नई भागवत है, अब तक तो पराशर के पुत्र व्यास जी पुराणकर्त्ता थे, परन्तु उन के पुत्रोक्त इस वचन में पराशर जी पुराणों के वक्ता हो गये ॥

इस से आगे अ० ८ में विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति है। ब्रह्मा को शोच हुवा कि मैं कहां-से आया, क्या करूं, तब चार मुख वाले ब्रह्मा कमल की डण्डी की नाल में को नीचे घुसे, यह (१९) श्लोक में बताया है। शेष शय्या के रूप की शोभा भी खूब ही बखानी है। अ० ९ में ब्रह्मा ने कहा "ज्ञातोसि मेद्य" अर्थात् 'आज मैंने जाना' इस से स्पष्ट है कि अब तक नहीं जाना था। यह नाभिकमल का ढकोसला न जाने कहां से आ गया जब कि पहिले सृष्टि का वर्णन तो कर ही चुके हैं ॥

अ० १० में दशविधसर्ग का वर्णन है। जिस में पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, भूत, प्रेत, पिशाच, गुह्यक सब की उत्पत्ति वर्णित है। अ० ११ में परमाणु आदि द्विपरार्धपर्यन्त तथा कल्प का वर्णन है। आगे अ० १२ में मन्वन्तर का वर्णन है, उस में प्रथम ही अन्धतामिस्र, तामिस्र, महामोह, मोह, तामसी रचना की। तब—

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बहुमन्यत।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततो सृजत् ॥ ३ ॥

पापी सृष्टि को देख ब्रह्मा दुःखी हुवे, फिर रचना की, तब सनकादि ४ मुनि रचे, यह ब्रह्मचारी हो गये, इन से ब्रह्मा ने सृष्टि रचनार्थ कहा, यह न माने, तब ब्रह्मा को कोप भया, इस से 'रुद्र' हुवे ॥

रुद्र की रची सृष्टि सब ओर से जगत् को खाने लगी, सहस्रों यूथ खाये सुन ब्रह्मा को शङ्का हुई, कहा कि " बस करो, रहने दो, तप करो " ॥

समीक्षा—न जाने सहस्रों यूथ विना ही रचों को कैसे मनोमोदकवत् खागये? केवल ४ सनकादि ही तो उत्पन्न हुवे थे, उन में से एक भी नहीं खाया लिखा। क्या यह रुद्रयूथ परस्पर खाते थे, वा कोई अन्य ब्रह्मा रच रहा था?

रुद्र तपोर्थ गये तब ब्रह्मा ने १० पुत्र रचे, मरीच्यादि नाम के इस प्रकार से हुवे—" उत्संग " गोंटे से नारद। अंगूठे से दक्ष। प्राण से वशिष्ठ। त्वचा से भृगु। हाथ से क्रतु। नाभि से पुलह। कानों से पुलस्त्य। मुख से अंगिरा,

नेत्रों से अग्नि, मन से मरीचि। दाहिने स्तन से धर्म। पीठ से अधर्म। अधर्म से मृत्यु। हृदय से काम। भौं से क्रोध। अधर ओष्ठ से लोभ। मुख से वाणी। लिङ्ग से समुद्र। गुदा से पापाश्रय मृत्यु हुवा। छाया से "कर्दम= देवहूति का पति" हुवा॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः॥
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्॥ २७॥

अर्थात् वाणी रूप बेटी ने ब्रह्मा का मन हर लिया। अकाम वाणी से ब्रह्मा सकाम हुवा, ऐसा सुना है॥ २७॥

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः।
मरीचिमुख्यामुनयो विस्रम्भात्प्रत्यबोधयन्॥ २८॥
नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः॥ २९॥
तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो।
यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते॥ ३०॥

अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि ने पिता को सकामज्ञान रोका कि:- "ऐसा काम न किसी ने किया, न आगे कोई करेंगे, जैसा कि आप पुत्री गमन (पाप) करते हैं। तेजस्वियों को भी ऐसा नहीं चाहिये क्योंकि वे जैसा करते हैं, दुनियां भी वैसा ही कर सुख पाती है"। इस पर ब्रह्मा जी शर्मा गये और शरीर त्याग दिया, वह शरीर नीहार (कुहरा) संसार में अब भी वर्त्तमान है। इस पर भाषाटीका ने तो टिप्पनी लगाई है कि "यह अलंकार है। यहां सरस्वती रूप विद्या जाननी"॥

हम भी इस को अलंकार ही मानते हैं परन्तु श्रीधरी आदि टीकाकारों ने यहां कुछ भी न कहा, यह आश्चर्य है। ऐसे अलंकार यदि भागवत में न होते तो क्या हानि थी और अलंकार है तो शरीर त्यागना, शर्म्म दिलानी, यह सब क्यों कल्पना करके प्रजा का मन बिगाड़ा? ब्रह्मा के शरीर से लोभ मोहादि की भी उत्पत्ति लिखी है, क्या उन के भी कोई शरीर है? सो यह सब कल्पना शास्त्र पर अश्रद्धा कराने को हैं। कहीं पापी सृष्टि को

देख ब्रह्मा को दुःख होना, यह सब इंजील जैसे क़िस्से हैं, वहां भी नाज के खाने से आत्मा पापी होगया है, कहीं आदम हव्वा जैसी कहानी यहां भी भरी गई हैं ॥

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेद ईश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥

अर्थात् ब्रह्मा ने ऋग्, यजु, साम, अथर्व । आयुर्वेद धनुर्वेद, गान्धर्व वेद (स्थापत्य), अर्थवेद चारों पूर्वादि मुखों से यथासंख्य रचे परन्तु इतिहास पुराण चारों मुखों से रचे । यहां यद्यपि पुराणों का नाम नहीं बताया है, यदि हमारे सनातनी भाई भागवतादि पुराणों का अर्थ करेंगे तो अब पराशर से भी पूर्व ब्रह्मा ही पुराणकर्त्ता होगये ॥

यदि एक गवाह तीन बार तीन प्रकार से पृथक् बयान करे तो दावा ख़ारिज हो जाता है, आठपुराणकर्त्ता-व्यास, पराशर और ब्रह्मा तीन बता-दिये, हम किस को सत्य माने । फिर सूत वैशंपायन आदि पृथक् रहे ॥

श्लोक ५२ । ५३ में मनु और शतरूपा की उत्पत्ति ब्रह्मा से बताई है, तभी से मैथुनीसृष्टि चली है, मनु की ५ सन्तान हुईं, प्रियव्रत और उत्तानपाद २ पुत्र, तथा आकूति देवहूति और प्रसूति ३ कन्या ॥

अ० १३ में मनु से ब्रह्माने कहा-हे राजा ! मनु ! प्रजा को उत्पन्न करो । रक्षा करो, तब मनु ने कहा कि प्रजा को कहां बसावें ? पृथ्वी तो है ही नहीं । ब्रह्मा ने शोच किया तब ब्रह्मा की नाक में से छोटा सा सूकर का बच्चा निकला, देखते २ अङ्गुष्ठमात्र से हाथी के समान होगया, मन्यादि चकित होगये । इस के नख रोम खुरादि सभी का वर्णन है, जो पार्थिव होते हैं ॥

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां सउत्थितः संरुरुचे रसायाः ।
तत्रापि दैत्यं गदया पतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥

अर्थात् डूबी हुई धरती को अपने दांत पर रख कर दैत्य से गदायुद्ध करके॥ क्या अच्छी पदार्थविद्या है । यदि दांत आदि बाराह का शरीर पार्थिव था, तो किस पृथिवी पर खड़े हो कर लड़े ॥

श्लोक २९ में " प्रायेण पद्म्याः पदवीं विजिघ्रन् " भी लिख चुके हैं,

इस से पार्थिव ही माना जा सकता है क्योंकि पृथिवीत्व से ही गन्ध गुण माना जा सकता है॥

चौदहवें अध्याय में हिरण्याक्ष की उत्पत्ति लिखी है कि दक्ष की बेटी दिति मरीचि के पुत्र कश्यप की स्त्री थी, उस ने सन्ध्या समय मुनि से वीर्यदान मांगा कि सौतेली सन्तानों से मुझे दुःख है। भर्त्तांने समझाई भी सो भी दिति ने वेश्या समान लज्जा त्याग पूजन करते मुनि की धोती खोल दी, भाग्य जान मुनि ने ...... किया, स्नान कर पुनः जप करने लगे, दिति ने शिव और पति की स्तुति की, तब पति ने कहा-तेरा पोता भक्त होगा।

अ०-१५ में दिति ने सौ वर्ष गर्भधारण किया, संसार में अन्धकार छा गया देवगण घबराकर ब्रह्मा की स्तुति करने लगे, कि यह क्या हुवा !!! ब्रह्माने कहा-मेरे सनकादि ४ पुत्र वैकुण्ठ गये थे, द्वारपालों ने इन्हें ७ वीं डौढ़ी पर बेत लगा के रोक दिया. तब सनकादि को क्रोध आया, शाप दिया कि तुम दोनों इस पद के अधिकारी नहीं हो। हाथ जोड़, पग पकड़, अपराध स्वीकार किया। भगवान् लक्ष्मीसहित इस (केस) की बात सुन उठ आये॥

अ० १६ में भगवान् ने फैसला किया कि तुम असुरता को प्राप्त होकर फिर यहीं आओगे। इस शाप के वश वही दोनों राक्षस दिति के गर्भ में आये। श्लोक ३० में यह भी विष्णु ने कहा है कि लक्ष्मी ने मुझ से प्रथम ही कहा था कि ब्राह्मण आवेंगे, उन्हें द्वारपाल रोकेंगे॥

फिर भला इन बेचारों का क्या दोष था? यहां वैकुण्ठ की बनावट भी बहिश्त जैसी वर्णित है, न जाने कुरान ने पुराण से या पुराण ने कुरान से यह शब्द सीखे हैं। हमारे सनातनी भाई मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं मानते पर यह वैकुण्ठ से गिरना क्या है?

अ० १७ में वर्णन है कि दिति के गर्भ जन्म समय गधे बोलने लगे, पक्षी चीखउठे, ढोड़ भागने लगे, खून बर्षने लगा, भयंकर वायु चला, उत्पात हुवे। कश्यप ने उन दोनों पुत्रों के हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष नाम धरे। हिरण्य कशिपु ने ३ लोक के लोकपालों को वश में कर लिया। छोटा हिरण्याक्ष गदा लेकर स्वर्ग गया, देवगण भागगये, तब यह वरुणलोक को गया, वहां भी देख कर सब भागगये। वरुण ने कहा-सिवाय ईश्वर के आप से कौन लड़सकता

है, वह पाताल में हैं; इस बात को सुन कर रसातल को गया वहां बाराह जी को दांत पर पृथिवी धरे देखा और कहा कि-

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता॥

अ० १८ । ३

छोड़, पृथिवी हम को ब्रह्मा ने दी है। फिर बाराह जी से युद्ध हुआ॥

समीक्षा-हम पौराणिकों से सुना करते थे कि धरती का बोरिया सा लपेट कर राक्षस लेगया था, सो यहां नहीं आया, कदाचित् बाराह पुराण में इस की विशेष कथा हो। यहां तो ब्रह्माने दी है, यही लिखा है। अ० १९ में हिरण्याक्ष मारा गया है। अ० २० में ब्रह्मा ने सृष्टि रची और—

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ।
जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥१९॥

तमोमय सृष्टि से अप्रसन्न हो ब्रह्माने अपना शरीर त्याग दिया, इस शरीर से रात्रि उत्पन्न हुई, यक्ष राक्षसों ने ग्रहण की। यक्ष राक्षस ब्रह्मा को खाने की सलाह करने लगे। और अद्भुतबात-

देवोदेवाञ्जघनतः सृजतिस्मातिलोलुपान् ।
त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥
ततो हसन्सभगवानऽसुरैर्निरपत्रपैः ।
अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धोभीतः परापतत् ॥ २४ ॥

ब्रह्माने जङ्घा से असुर रचे, वे कामी होकर ब्रह्मा से ही मैथुन करने दौड़े। निर्लज्ज असुरों की चेष्टा देख, ब्रह्मा हंस कर क्रोधित हुवे, आगे भगवान् से फ़र्याद की कि-

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनाऽसृजं प्रजाः ।
ताइमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

हे परमात्मन् ! मैंने तो आप के कहने से प्रजा उत्पन्न की, अब ये पापी मुझ से मैथुनार्थ पीछे पड़े हैं। प्रभो ! रक्षा करो॥

सोवधार्य्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ।
विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥ २८ ॥

भगवान् इस ब्रह्मा की दीनता जानकर बोले कि हे ब्रह्मा ! अपना यह घोर शरीर त्याग दो, तब ब्रह्मा ने शरीर त्यागा और उस उमाती, उछलती, सुन्दर, गेंद उछालती स्त्री को देख दैत्य बोले कि तू कौन है ? कहां से आई है ? हेरफेर की बातें कर सन्ध्यानाम की स्त्री असुरों ने घेर ली ॥

समीक्षा—क्या यह ब्रह्मा जी का ही रूप था या कौन थी ? कुछ भी पता न दिया । श्लोक २८ में ब्रह्मा का शरीर त्यागना, २९ में स्त्री का वर्णन शङ्का में डालता है । ब्रह्मा का बार २ शरीर त्यागना भी अद्भुत बात है । एक बार पुत्री सरस्वती के अलङ्कार में, दूसरे इसी अध्याय श्लोक २० में, फिर श्लोक २८ में शरीर त्याग है, परन्तु फिर जन्म कैसे हुवा, यह पता नहीं । धीमुखे ब्रह्मा पुरुष पर उसी के रचेहुवे पुत्र असुर कैसे आसक्त हुवे ? क्या यह ईश्वर के विरुद्ध कुरीति उस समय भी थी ? कदापि नहीं ॥

इस प्रकार की कथा केवल सनातनियों के नीचा दिखाने के अतिरिक्त क्या मतलब रखती हैं, हम नहीं जानते कि ऐसी २ भद्दी रद्दी बातों के पुस्तक को धर्मपुस्तक कैसे कह सक्ते हैं । इस के घर बैठने पर ब्रह्मा ने अप्सरा बनाईं, फिर—

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीम्प्रियाम् ॥ ३९ ॥

फिर शरीर त्यागा । फिर भूत प्रेत पिशाच नंगे रहने वाले रचे, निद्रा उन्माद रचे, आलस्य रचा, फिर पितर रचे, जिन का श्राद्ध होता है, सिद्ध विद्याधर किन्नर जो ब्रह्मा के त्यागे तनु थे, वह उन्हों ने पाये । क्या यह तनु कपड़े की पोशाक का तो नाम नहीं धरा है ?

फिर सर्पादि सृजे हैं, फिर ऋषि रचे । श्लोक ४८ में फिर शरीर त्यागा है । ब्रह्मा के मुर्दा बालों से सर्प हुवे, तब ब्रह्मा प्रसन्न हुवे और मनु सृजे ॥

पाठको ! यदि हम इस प्रकार भी अध्याय वार वर्णन करेंगे तो पुस्तक बहुत बढ़जावेगी, इस लिये संक्षेप से किसी २ कथा का वर्णन ही करेंगे । हम को १८ हीं पुराणों का विचार कर्त्तव्य है, इस लिये भी संक्षेप करना अभीष्ट है ॥

अ० २१ में मनु की पुत्री देवली में कर्दम से कैसे सन्तान हुई ? इत्यादि प्रश्न हैं। तब कर्दम के तप का वर्णन और भगवद्दर्शन की कथा में भगवान् को गरुड़ पर सवार बताया है। श्लोक ३४ अ० २२ में—

मनु ने स्वकन्या कर्दम से विवाहने की प्रार्थना की तो कर्दम ऊटपटांग कहते हैं कि इस से अवश्य विवाह करेंगे ? क्वारी है और जब यह अपने महल पर गेन्द खेलती थी, तब विश्वावसु इस के रूप को देख विमान से गिर पड़ा था ॥

समीक्षा-वाह री सभ्यता ! जैसे आजकल असभ्य सांगी गीत गाते हैं कि (कितने तैने घायल कीने, कितने लोट पोट) इत्यादि ॥

अभी गरुड़ पक्षी कद्रू विनता से उत्पन्न हुवे ही नहीं, भगवान् पहले ही चढ़ बैठे ॥

अ० २२ श्लोक २९। ३१ में लिखा है कि वाराह अवतार ने जहां शरीर कम्पाया था, उन के झड़े रोंगटों से कुशा हुवे, इसी लिये यज्ञ रक्षार्थ काम में आती हैं। श्लोक ३५ में इस कथा के श्रवण से कलियुग में उद्धार कहा है। अ० २३ में देवहूति को कर्दम ने सारा भूलोक विमान में बैठाय, दिखाय ९ कन्या उत्पन्न कर फिर १०० वर्ष भोग किया, जो क्षणमात्र प्रतीत हुवा। अ० २४ में कर्दम से कपिलावतार बताया है, वहां जब गर्भ में—

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥ ३ ॥
अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घना घनाः ।

अर्थात् परमेश्वर कर्दम के वीर्य में वास कर देवहूति के गर्भ में आये, तब आकाश में बाजे बजे, अप्सरा नाचीं इत्यादि ॥

समीक्षा-गीता में तो कृष्णचन्द्र ने कहा है कि जब २ धर्म की ग्लानि, अधर्म की वृद्धि होती है, तभी मेरा अवतार होता है, परन्तु यहां तो धर्मात्मा प्रजा में ही कपिलदेव आ पहुंचे। माता को उपदेश करने आये, क्या कर्दम कम उपदेशक थे ? फिर गर्भवती से "नाना" ब्रह्मा कहते हैं कि तेरे गर्भ में कैटभासुर का मारक उत्पन्न होगा। देखो श्लोक १८ (इस के विरुद्ध मधुकैटभ का दुर्गापाठ में देवी से वध बताया है) ब्रह्मा की आज्ञा से कर्दम ने ९ बेटी

मरीच्यादि को देदी, विवाह विधिपूर्वक किया। भला यह कैसी विधि, जो मामाओं के साथ भानजी व्याही जावे?

भीमसेनादि बहुत से पौराणिक कह देते हैं कि मानसीसृष्टि में यह पाप नहीं है, परन्तु यहां तो स्पष्ट मैथुनी प्रजा है, कन्या मैथुन से हुई हैं॥

अ० २६ श्लोक ११ में २४ तत्वों की गणना है, परन्तु प्रथम ३३ तत्व बता आये हैं, देखो अ० ६। २ यहां उस के विपरीत २४ हैं। अ० २८ में योगमार्गोपदेश है, उस में भी श्लोक ६ में—

वैकुण्ठलीलाऽभिध्यानं समाधानं तथात्मनः॥ ६॥

अर्थात् एकान्त वासादि कहते २ वैकुण्ठ की लीला का ध्यान करना भी बताया है, सो ठीक नहीं ज्ञात होता, क्योंकि पुराणों ने वैकुण्ठ लीला में ऐश्वर्य का सामान, मद, मोह, मत्सरता, स्त्री, गान, वाद्य, युद्ध, शाप, सोना, जागना आदि सभी सांसारिक भोग लिखा है। फिर घर छोड़ कर वन में भी यही ध्यान बताना उचित नहीं है। श्लोक १४ से विष्णु का ध्यान प्राणायाम में जो बताया है, वह भी सब हारकङ्कणादिधारी शेषविहारी का ही वर्णित है, जो योगशास्त्र के प्रतिकूल है। अ० ३३ में लिखा है कि—

अहो बत श्वपचोऽतोगरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ते ये॥

जिस की जिह्वा पर तेरा (परमेश्वर का) नाम है, वह चांडाल भी श्रेष्ठ है, उन्हों ने तप, होम, स्नान, वेदपाठ सब कुछ कर लिया, जिन आर्यों ने तेरा नाम लिया॥

हे सनातनधर्मियों! यहां तो भागवत ही भङ्गियों को भी वेदपाठ करा करा आर्य शुद्ध करने लगी।

इति तृतीयस्कन्धसमीक्षा॥ ३॥

ओ३म्

अथ चतुर्थस्कन्धसमीक्षणम्

(सगे भाई का बहन से विवाह)

प्रथमग्रासे मक्षिकापातः के अनुसार चतुर्थस्कन्ध में सब से पहिले ही एक महाअधर्म की शिक्षा लिखी है। अ० १ श्लोक १-६ तक देखिये॥

मैत्रेयउवाच-

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः॥ १॥
आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः।
पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः॥ २॥
प्रजापतिः स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत्।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना॥ ३॥
यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक्।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी॥ ४॥
आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं वितनरोचिषम्।
स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम्॥ ५॥
तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः।
तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान्॥ ६॥

अर्थ-स्वायंभुव मनु के तीन कन्या शतरूपा से उत्पन्न हुईं १- आकूति, २-देवहूति, ३-प्रसूति। आकूति "रुचि" को व्याही, उससे पुत्र पुत्री विष्णु-यज्ञस्वरूप और लक्ष्मी का अंश दक्षिणा नाम की हुईं। पुत्र (यज्ञ) को उस के नाना मनु ने रख लिया और (दक्षिणा) पुत्री पिता (रुचि) के घर रही, फिर सहोदर भाई यज्ञ का अपनी बहन दक्षिणा से विवाह हुवा १२ पुत्र पैदा हुवे॥

समीक्षा-१-इस से बढ़कर पाप साधारण पुरुष भी नहीं कर सकता फिर ईश्वरावतार जिस को २४ अवतारों में गिना माना है वह क्यों ऐसे पाप में प्रवृत्त हुवा? जब कि अवतारों के कर्म लोगों को सिखाने को बताये जाते हैं॥

नर नारायण अवतार

अ० १ श्लोक ४८

दक्ष प्रजापति ने १३ कन्या धर्म को व्याहीं थीं, उन के नाम और सन्तान भी नीचे लिखे जानों। १ श्रद्धा से शुभ, २ मैत्री से प्रसाद ३, दया से अभय, ४ शान्ति से सुख, ५ तुष्टि से मुद्, ६ पुष्टि से स्मय, ७ क्रिया से योग, ८ उन्नति से ..., ९ बुद्धि से अर्थ, १० मेधा से स्मृति, ११ तितिक्षा से क्षेम, १२ ह्री से प्रश्रय और १३ मूर्त्ति से नर नारायण उत्पन्न हुवे ॥

इन बारहों के पुत्रों के नाम विचार देखें यह मूर्त्तिमान् शरीरधारी नहीं हो सक्ते फिर एक तेरहवीं स्त्री से ही नर नारायण अवतार ऋषिरूप कैसे कहलाये गये। इन तेरहों पुत्रियों के नाम भी शरीरधारी के से नहीं ज्ञात होते। इन दोनों अवतारों का स्वायंभुव मनु के समकालीन होना सिद्ध है परन्तु आगे श्लोक ५९ में अर्जुन श्रीकृष्ण बताये हैं। यथ–

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥ ५९ ॥

यह तो इसी गत द्वापरान्त में हुवे हैं। आगे स्वाहा स्त्री से अग्नि देव की सन्तति का वर्णन है। अग्नि के ही सन्तान अग्निष्वात्त बर्हिषद् सौम्य और आज्यपा पितर हुए ॥

समीक्षा–आज कल सनातनी लोग अग्निष्वात्त आदि का अर्थ मरे पितर कहते हैं परन्तु यहां उत्पत्ति ही लिखी है ॥

दूसरे अध्याय में दक्षप्रजापति के यज्ञ का वर्णन है। दक्ष का अर्थ चतुर है और प्रजापति होने से भी उन के ज्ञान मान का अनुमान हो सक्ता है तथापि उस ने अपने जामाता शिव को (जिसे कि पौराणिक ईश्वर मानते हैं) बड़ी निन्दा से पुकारा है, नमूने के लिये दो श्लोक लिखते हैं:–

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः।
अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥
चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्नृस्थिभूषणः।
शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तोमत्तजनप्रियः ॥ १५ ॥

अर्थात् शिव प्रेतों में बासी, रोता, हंसता, मनुष्य की हड्डी की माला धारे अशिव है। प्रजापति की यह राय है। अध्याय ५ श्लोक ३ में शिव की जटा से वीरभद्र की उत्पत्ति लिखी है। क्या बालों से बच्चा या जवान पुरुष पैदा हो सकता है? अ० १३ में मैत्रेयउवाच-श्लो० २५ से आगे तो या ही पुनः २८ से आगे लिख दिया है। और वेन की उत्पत्ति भी यज्ञ से हुई है, फिर न जाने अधर्मी क्यों हुवा। अ० १४ में वेन राजा के देह मंथन से (निषाद) भील का पैदा होना, अ० १५ में पृथु राजा की उत्पत्ति, अर्चि देवी का अवतार भी लिखा है, यह भी जोड़िया ही हुवे हैं। श्लो० २ में लिखा है:—

तदृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः।

श्लो० ६ में—

एष साक्षाद्धरेरंशो जातोलोकरिरक्षया।
इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥

अर्थात् यह जोड़ा हुवा है, यह साक्षात् हरि का अवतार है, यह रानी लक्ष्मी हुई॥

हम नहीं कह सकते कि मर्दों के देह से सन्तान हो और फिर भी बहन भाइयों में स्त्री पुरुषों का व्यवहार कैसे हो सक्ता है। सभी अवतारों को दोष धर कर पुराण कैसे माथा ऊंचा कर सक्ते हैं? अ० १९ श्लोक २४। २५ पृथु के अश्वमेध में से इन्द्र ने घोड़ा चुराने के लिये बहुत से फ़कीरी बाने बनाये, वही पाखण्ड चिह्न दिगम्बर जैन बौद्ध बताये गये हैं। यथा इस श्लोक की टीका में स्पष्ट लिखा है कि—

पानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥ २३ ॥
धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु। पेशलेषुच वाग्मिषु २५

इस पर श्रीधरी टीका भी (नग्ना जैनाः रक्तपटा बौद्धाः कापालिकादिकाः) इस से सिद्ध है कि भागवत के कर्त्ता से पूर्व जैनी हो चुके हैं। इन्द्र को यज्ञ में पाखण्डी बताना भी चिन्त्य है। अ० २३ में उसी अर्चि रानी का पृथु के साथ सती होना भी लिखा है जो वेन के शरीर से पृथु के साथ ही पैदा हुई थी। यथा—

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वेनम् ॥२०॥

ooo विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २३ ॥

अर्थात् अर्चि रानी वन को गई, मरने पर पति के चरणों का ध्यान करके अग्नि में प्रवेश कर गई। (यह भाई बहन थे, सन्तान भी हुई) फिर सती हुई। यह सती की चाल पुराणों से प्रचलित होगई है। अ० २८ में एक२ स्त्री से एक एक अरब १०००००००० सन्तान लिखी हैं॥

एकैकस्यां भवत् तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥ ३१ ॥

झूंठा दूवा मारे तो फिर कमी क्या थी, पूरी २ संख्या ही लिखे!!! अ० २९ में लिखा है कि साक्षात् शिव मनु दक्षादि सनकादिक मरीच्यादि भी देखते हुवे भी परमेश्वर को नहीं देखते। यथा–

पश्यन्तोपि न पश्यन्ति पश्यन्ति परमेश्वरम्।

अब शिव को साक्षात् भगवान् किस प्रकार कह सके हैं। इति॥

ओ३म्

अथ पञ्चमस्कन्धसमीक्षणम्

ब्रह्मा को ईश्वर बताने वाले पौराणिक यदि ध्यान देकर भागवत के स्कं० ५ अ० १ श्लोक १४। १५ को भी पढ़लें तो ज्ञात हो जाय कि ब्रह्मादि कर्मबन्धन से सुख दुःख भोगते हैं, वहां प्रियव्रत से ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि हे पुत्र! जिन की वेदवाणी रूप डोर में अति दुस्तर गुण कर्मों से बन्धे हुवे हम सब ईश्वरार्थ ऐसे भेट देते हैं, जैसे नाथ में बंधे चौपाये बैल मनुष्यों के कार्य करते हैं॥ १४॥

हे अङ्ग! कर्मानुसार ईश्वर के दिये हुवे सुख दुःख हम भोगते हैं। हम ईश्वर के आधीन ऐसे योनियों में जाते हैं जैसे समाखे के पीछे अन्धा चलता है, चाहे वह धूप में लेजावे चाहे ठण्ड में॥ १५॥

दशक १९ में लिखा है कि प्रियव्रत के पुत्र परम हंस हो गये और ग्यारह अरब वर्ष राज्य किया, नित्य स्त्रीसम्भोग करता रहा। जब कि सृष्टि ही ४ अरब* वर्ष रहती है, उस में १४ मनुहोते हैं, फिर स्वायंभु के पुत्र प्रियव्रत का राज्य ११ अरब वर्ष लिखना गप्प नहीं तो क्या है? पुराणानुसार भी लक्ष वर्ष से अधिक किसी युग में भी आयु नहीं होती॥

* सृष्टि का समय वेद मनु महाभारतादि में पुराणों में और नित्य के संकल्पों तक से ४ अरब वर्ष का ही पाता है, विस्तार के भयसे यहां नहीं लिखा गया॥

समुद्रों का वर्णन–

अ० १ द० ३१ में लिखा है। यथा–

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त
सिन्धव आसन्यत एव कृताः सप्त भुवोद्वीपाः ॥ ३१ ॥

राजा प्रियव्रत ने यह शोच कर कि सूर्य रात्रि को नहीं रहता इतने में अपना प्रकाश करूंगा, सात परिक्रमा सूर्य के रथ समान अपना रथ बनाय उस रथ में बैठ कर कीं ॥ १० ॥ ये जो समुद्र हैं उसी के पहिये की लीक हैं। इसी से सात द्वीप बने हैं ॥ ३१ ॥

यहां भागवत ने वेद का विरोध किया है। क्योंकि–

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। यजु० १०।१९०।३
ततः समुद्रोऽर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ॥
समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ॥

इत्यादि प्रमाणों से समुद्र का होना सनातन सिद्ध है, और भागवत ही में क्षीरसागर समुद्र में विष्णु का शयन, ब्रह्मा की जल से उत्पत्ति आदि लिखी है, फिर यहां सात समुद्रों का प्रियव्रतरथनेमि की लीक से उत्पन्न लिखना भूल ही सिद्ध करता है। भाषा टीकाकार ने भी यहां शङ्का की है कि राजा का रथ आकाश में घूमता था फिर पृथ्वी पर समुद्र कैसे बने?

एक से रथ से समुद्रों में यह भेद कैसे हुवा कि एक से दूसरा द्विगुण तीसरा उस से भी द्विगुण इसी प्रकार एक सी लम्बाई चौड़ाई के रथ से पृथक् २ आकार वाले समुद्र कैसे बने?

इस का उत्तर भी स्वयं दिया है कि इस के रथ के सारथि को उतार भगवान् स्वयं सारथि बन जाते थे, रथ को बढ़ा लेते थे। परन्तु यह पाठ मूल में नहीं है, कल्पना मात्र है। हम यह प्रश्न करते हैं कि यह इतना बड़ा रथ जब चला होगा तो घोड़े कहां पांव रखते थे? तथा धुरा पृथ्वी से कितना ऊंचा था, बना कहां था? (भाषाटीकाकार यह भी लिखते हैं कि ब्रह्मा ने स्वायंभुव मनु से जो सृष्टि रचना कराई तब उन्होंने ७ समुद्र ९ द्वीप नहीं बनाये) परन्तु रथ का दूसरा पहियां कहां रहा, यह नहीं बताया? क्या साइसिकल के समान था?

इस में १ खारी जल, २ ईख का रस, ३ मदिरा, ४ घृत, ५ क्षीर (दूध) ६ मट्ठे और ७ सातवां शुद्ध जल का समुद्र है। यदि ईख के रस का समुद्र है तो छोई कहां गई, ईख के रस से पौराणिकभाई मिठाई बनाकर व्यापार करें तो लाभ है परन्तु यह तो सड़ कर सिरका होगया होगा। न जाने यह किसने भरे हैं, यह नहीं लिखा। भूगोलविद्याविद् मण्डली ने सब समुद्रों को क्षार ही पाया है, ज्योतिष के ग्रन्थों में भी क्षार समुद्र का ही वर्णन है, फिर न जाने पुराण वालों को ईख का रस, मदिरा, घृत दूध, मट्ठा कहां से सूझा ?

अ० २ में प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र ने तो ब्रह्मा की पूजा पर्वत में आरम्भ की और ब्रह्मा ने पूर्वचिती अप्सरा भेजी। भला यह न्याय कैसा है कि भक्त को शुभ कर्म से हटावे ? उस अप्सरा से "अयुतायुत परिवत्सरोपलक्षणम्०" १९ * (दश हज़ार को अयुत कहते हैं, यहां तो 'अयुतायुत' कहा गया है जो दश लक्ष होते हैं, परन्तु टीका ने दश हज़ार ही अर्थ किया है) संयोग किया, नौ पुत्र उत्पन्न किये ॥

आगे दण्डक २० में "सा सूत्वाऽथ सुतानवानुवत्सरं गृहएवाऽपहाय०" अर्थ—वह अप्सरा प्रतिवर्ष एक बेटा पैदा कर ऐसे ९ बेटे ब्रह्मा जी पर छोड़ चली गई। यहां गणितशास्त्रविद् भी चक्कर खाते होंगे, प्रतिवर्ष एक पुत्र होने पर भी ९ बेटे ही हुवे। १०००० वर्ष व्यर्थ भोग ही रहा। बलिहारी ! गणक जी ! अध्याय ३ में नाभि राजा के पुत्र ऋषभदेव जी की उत्पत्ति है, यह २४ अवतारों में गिने जाते हैं, परन्तु स्वयं भाषा टीका में लिखा है कि यह जैनमत प्रवर्त्तक थे। इस से सिद्ध है कि जैनमत भी पुराणों की शाखा है जो वेदों और ईश्वर को भी नहीं मानते हैं। इन को ईश्वरावतार लिखने से हमें संदेह है कि कदाचित् यह कथा जैनियों ने ही पुराणों में बनाई होगी ॥

अ० १६ दण्डक ५—

योवाऽयं जम्बूद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम्॥

* द्वितीयाध्याय में छठे दण्डक के भाषाटीकाकार ने अङ्क पर अङ्क नहीं दिया है और २० वें पर दो कर दिये हैं। इस लिये १ दण्डक आगे पीछे का कम हो गया है ॥

जम्बूद्वीप कमलपत्र सा १ लाख योजन वर्तुल है। पूर्व अध्यायों में कह चुके हैं कि एक समुद्र से दूसरा दुगना है तो उन के बीच का भाग भी द्विगुणा ही होगा * इस हिसाब से १। २। ४। ८। १६। ३२। ६४ लाख योजन ये सातों द्वीप हुये। योग १२७ लाख योजन होते हैं। इस के यदि ५ मील का योजन मान कर मील बनाये जावें तो ६३५ लाख मील होते हैं। इस में समुद्रों की योजन संख्या और जोड़ी जाने से पूर्व यह निश्चय करना है कि क्षार समुद्र शत योजन विस्तीर्ण लिखा पाया जाता है यदि इस का फान्ट १०० योजन है तो दूसरे समुद्र का २०० योजन फांट होगा और वह चारों ओर को ऐसे ही फैला हुवा होगा तो बहुत अधिक भूमि को घेरेगा, इसी प्रकार तीसरा चौथा भी समझना चाहिये, परन्तु हम द्विगुणा ही रक्खा लगावें तो करोड़ों मील का विस्तार हुवा॥

सिद्धान्त शिरोमणि के गणिताध्याय में लिखा है कि-

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धयः।
तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवोऽथप्रोच्यते योजनैः॥

अर्थात् पृथिवी की परिधि ४९६७ योजन है। यदि ५$\frac{1}{230}$ मील का एक योजन मानें तो २४८५६ मील होते हैं, यही परिधि योरोप के वासी विज्ञानविदों ने मानी है, तथा इसी श्लोक में व्यास १५८१ योजन का बताया है, यह भी उक्त विद्वानों की सम्मति का समादर कारक है। कुछ हम ही पुराण खण्डन नहीं करते हैं, पूर्व भास्कराचार्य जो सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के कर्त्ता हुवे हैं, वह भी स्वयं पुराणोक्त भूगोल का खण्डन अपने ग्रन्थ में इस प्रकार कर गये हैं। यथा—

कोटिघ्नैर्नखनन्द षट्क नख भू भूभृद् भुजङ्गेन्दुभि-
र्ज्योतिः शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः॥
तद् ब्रह्माण्ड कटाह सम्पुट तटे केचिज्जगुर्वेष्टनं-
केचित् प्रोचुरदृश्य दृश्यक गिरिं पौराणिकाः सूरयः॥

अर्थ-(१८७१२०६९२०००००००० योजन को ज्योतिष शास्त्र के जानने वाले सारी सृष्टि का एक छोटा भाग मानते हैं। बहुत से इस को पृथ्वी की परिधि का मान समझते हैं और पौराणिक विद्वान् केवल इस को लोकालोक पर्वत की ऊंचाई समझते हैं॥

* अ० २० में एक से दूसरा द्विगुणा लिखा ही है॥

इस से सिद्ध है कि पौराणिक भूगोल का मान्य पूर्वाचार्यों में भी नहीं था॥ पृथ्वी को कमलपत्रवत् चपटी बताना और सुमेरु को जड़ में १६ हज़ार ऊपर से ३२ हज़ार योजन और एवलक्ष योजन ऊंचा बताना भी भूल है। कोई भी पर्वत ऐसा नहीं जो ऊपर चौड़ा नीचे से पतला हो। तथा एक लाख योजन ऊंचा हो, जड़ इतनी पतली हो, यह तो टूट ही पड़ता। तथा च पृथ्वी को चपटा मानने का खण्डन भी सि० शि० में लिखा है–

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तिरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥ १॥

अर्थ–यदि पृथिवी चपटी दर्पणोदर धरातल के समान होती तो सूर्य–पृथिवी के ऊपर गया हुवा भी सायंकाल के पीछे मनुष्यों को क्यों नहीं दीखता॥

धरती के चपटी होने पर और भी एक आश्चर्य की बात है कि सात समुद्रों के आठ द्वीप होने चाहियें क्योंकि सात दरों के आठ खम्भ होते हैं, फिर सात द्वीप लिखना भूल ही सिद्ध होती है॥

आगे पृथिवी का घूमना वैदिक मन्त्रों और प्राचीन ज्योतिष आचार्यों के मत से लिखा जाता है। पाठक विचारें कि पुराण वेद के कैसे प्रतिकूल हैं भूमि अपनी कक्षा में स्थित होकर सूर्य की परिक्रमा करती है। यथा हि–

या गौर्वर्त्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते॥

(ऋ० १०। ६५। ६)

अर्थ–(या गौः *) जो पृथिवी (अवारतः) निरन्तर अर्थात् सदा (पयो दुहाना) अन्न, रस, फल, फूल आदि पदार्थों से प्राणियों को पूर्ण करती तथा (व्रतनीः) अपने नियम का पालन करती (प्रब्रुवाणा) परमेश्वर की महिमा का उपदेश करती (दाशुषे वरुणाय) दानी और श्रेष्ठ जन को (देवेभ्यः) और विद्वानों को (हविषा दाशत्) अनेक सुख देती (वर्त्तनिम्) अपनी कक्षारूप मार्ग में (विवस्वते) सूर्य के (पर्येति) चारों ओर घूमती है॥

* पृथिवी का नाम निघं० १। १ में "गौः" है, जिस का अर्थ "गच्छतीति गौः" जो चलती है सो गौः (भूमि) है। इस से भी सिद्ध है कि ऋषिलोग भूमि का चलना मानते थे॥

पृथिवी केवल सूर्य के चारों ओर ही नहीं घूमती किन्तु साथ ही साथ अपनी (अक्ष) कीली पर भी घूमती है, जैसे लट्टू अपनी कीली पर भी घूमता है और अपनी जगह से भी हटता है और जैसे गाड़ी का पहिया अपनी धुरी पर घूमता है और साथ ही साथ सड़क पर भी घूमता जाता है। इस में प्रमाण यह है—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

(ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४७ और यजु० अ० ३ मं० ६)

अर्थ- (अयम्) यह (गौः) पृथिवी लोक (मातरम्*) जल को (असत्) प्राप्त होकर अर्थात् जल के सहित (पृश्निः) अन्तरिक्ष में (आक्रमीत्) आक्रमण करता है अर्थात् अपनी धुरी पर घूमता है। (च) और (पितरम् †) सूर्य के भी (पुरः प्रयन्) चारों ओर घूमता है॥

इस विषय में बहुधा मनुष्य कई प्रकार की शङ्का किया करते हैं कि पृथिवी चलती हुई प्रतीत क्यों नहीं होती ?

उत्तर—कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटा
इव भान्ति यान्तः॥ सिद्धान्तशिरोमणि॥

अर्थ—जैसे कुम्हार के घूमते हुवे चाक (चक्र) पर बैठे हुवे कीड़े उस की गति को नहीं जान सकते, ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई नहीं प्रतीत होती। अन्यत्र-आर्यभटीये—

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भाति तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायामिति॥

अर्थ- जैसे नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर वस्तुओं को दूसरी ओर से चलते हुवे से देखता है ऐसे ही मनुष्यों को सूर्यादि नक्षत्र जो स्थिर हैं,

* यहां जल को अलङ्काररूप में पृथिवी की माता कहा है। यथाह—
तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः "अद्भ्यः पृथिवी" इत्यादि॥तैत्ति०उ०॥

† यहां सूर्य को अलङ्काररूप से पृथिवी का पिता कहा है क्योंकि सूर्य ही से पृथिवी की (अपनी कक्षा में) स्थिति, मनुष्यों का जीवन, वर्षा और उस से वनस्पति आदि की उत्पत्ति होती है॥

पश्चिम की ओर चलते हुवे वे दीखते हैं और पृथिवी स्थिर प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में भूमि ही चलती है ॥

द्रष्टव्य १२ में चार वृक्षों का वर्णन है कि ११हज़ार योजन ऊंचे चारों वृक्ष हैं । आम, जामन, कदम्ब और वट; इन के फल आठ सौ इकसठ हाथ लम्बे वायुपुराण में लिखे हैं, फल कुण्डों में आकर गिरते हैं, उन की चारों नदी चारों दिशाओं को बहती हैं, उन में स्नान करते हैं । भारतवर्ष की ओर को जम्बू नदी बहती बताई है, यथा द० १९ –

एवं जम्बूफलानामऽत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणा०

बिना गुठली की जामन हाथी सी गिरती हैं, ४० कोस तक सुगन्ध देती नदी बहती है । अन्यों की तो ख़बर नहीं, पर जम्बू नदी तो इधर ही होनी चाहिये थी, सो है नहीं ॥

इस पर भाषाटीकाकार व संशोधक पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र भारतधर्म-महामण्डल के महोपदेशक के हृदय में भी शङ्का हुई है, टिप्पणी में चित्त कांपना छिपजाना लिखा है, परन्तु उत्तर में यही कह टाल दिया है कि सभी वर्णाश्रमधर्म लुप्त हो गये, सो भगवान् भी डर गये कि यह दुष्ट लोग इन स्थानों को भ्रष्ट कर देंगे, अतः छिपा दिये हैं, किसी का प्रभाव हर लिया है । वाह क्या ठीक उत्तर है ॥ द० २८–

सुमेरु के ऊपर १० हज़ार योजन लम्बी ४ हज़ार चौड़ी ब्रह्मा की बनाई स्वर्णपुरी है– अ० १७ में द० १ ॥

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिंजल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्द्धन्यवततार ॥ १ ॥

जब वामन अवतार बलि के यज्ञ में पृथ्वी नापते थे तब बायें पांव का अंगूठा ब्रह्माण्ड फोड़ बाहर निकल गया उस से जलधारा चरणकमल के केशर को धोने से लाल २ हज़ार युगों में नीचे गिरी, वह गङ्गा है ॥

समीक्षा-(१) ब्रह्माण्ड के फूटने से पानी निकलना कैसी असम्भव बात है, क्या ब्रह्माण्ड के बाहर पानी है ? क्या ब्रह्माण्ड के भीतर वास का यह अर्थ है कि कोई अण्डे जैसा बक्कल हमारी पृथिवी और सूर्यादि के चारों ओर है और वह अण्डा नाके के अण्डे के समान कहीं जल के पास धरा है ?

(२) यह धारा लाल रङ्ग केशर को लेकर १००० युग में तो उतरी परन्तु सूखी बनी ही रही तो अब गङ्गा में सुर्ख जल क्यों नहीं ?

(३) हज़ार युग तो एक मन्वन्तर में भी नहीं होते ७१ चतुर्युगियों का ही १ मन्वन्तर होता है तो १ मन्वन्तर के २८४ युग हुवे ॥

(४) यदि १००० युग में वहां से पानी की गति नीचे को हुई तो कितनी दूरी से वह जल गिरा, आप स्वयं अनुमान कर सकेंगे । यदि १ मिनट में १ मील से जल गिरे तो भी १ घण्टे में ६० मील १०० घण्टे में ६००० मील हुवा तो महीनों वर्षों में ही क्रोड़ों मील हो जावेगा फिर युग कहां, युग पर भी सन्तोष नहीं १००० युग बता दिये हैं १००० युग का तो प्रलय समय द० १५ में तो कल्पान्त हो जाता है, फिर कल्प के मध्य में यह वृत्तान्त आना असम्भव क्यों नहीं?

इलावृतेतु भगवान् भव एक एवपुमान् नह्यत्राऽपरो निविशति

इलावृत खण्ड में तो शिव ही एक पुरुष है (अन्य सब स्त्रियां ही रहती हैं)

समीक्षा-भला वहां सृष्टि कैसे होती है ? स्त्रियों को कौन पैदा करता है?

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो०

हज़ार अरब स्त्रियां वहां रहती हैं (यहां नाथ शब्द बहुवचनान्त है । इस से वहां अन्य पुरुष रहने सिद्ध हैं ॥

अ० १८, १९ में प्रत्येक खण्ड (वर्ष) में एक २ अवतार की स्तुति एक २ भक्त करता है, ऐसा लेख है । सो क्या इलावृत में कोई दूसरा भक्त स्तुति करता है, वहां तो कोई पुरुष है ही नहीं स्तुति करने कहां से आगया । तथा समय नहीं लिखा, क्या सदाकाल एक ही पुरुष स्तुति करता रहता है? भारत वर्ष में नरनारायण तप करते और नारद स्तुति करते हैं ॥ अ० १९ द० ९ । १०

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्याऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित् पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥

भाषाटीकाकार कहते हैं कि-मानसोत्तर और सुवर्ण पर्वत के बीच में जितनी भूमि है उतने ही प्रमाण की एक करोड़ साढ़े सत्तावन लाख योजन दूसरी भूमि स्वादिष्ठ जल के सागर के आगे है, उस में प्राणी रहते हैं, उस से परे सुवर्णमय भूमि है ॥

यह ६ द्वीप का वर्णन है क्योंकि मानसोत्तर दधि मण्ड (मठे) के समुद्र से आगे है॥ पुष्कर द्वीप छठा लिखा है यहां भी गड़बड़ है क्योंकि उस में आगे ७ वें का वर्णन और भी है, समझ में नहीं आता कि जब मट्ठे का समुद्र छठा है और उस से आगे ही मानसोत्तर लिखा है, इसी को पुष्कर द्वीप कहा है फिर वह सातवां क्यों नहीं हुआ ॥ अ० २० द० २९ । ३० देखो । इसी मानसोत्तर और सुमेरु के बीच के भूभाग का उक्त वर्णन है इस को स्वादूदक समुद्र शुद्ध जल से घिरा भी उक्त दण्डकों में बताया है । और फिर द० ३४

ततः परस्तात् लोकालोकनामाचलो० ३४

इस द्वीप से परे लोकालोक नाम पर्वत है इत्यादि लिखा है । यह पर्वत तो सब के चारों ओर होने से क्रोड़ों मील लम्बा चाहिये जो सर्वथा झूंठ ही हो सकता है ॥

भाषाटीकाकार "आदर्शतलोपम" के अर्थ को छोड़ गये हैं । क्योंकि आज कल तो भूमि को सभी अण्डाकार मानते हैं। भास्कराचार्य ने दर्पणाकार पृथिवी का खण्डन किया है सो हम पूर्व दिखा चुके हैं । ८ करोड़ ३९ योजन है वह स्वर्णमयी है और शीशे के समान है । यहां शिव तन्त्र का प्रमाण दिया है कि पृथिवी २५३३५०००० के परिमाण में है । हम ४९६७ योजन पृथिवी की परिधि का परिमाण पीछे दे आये हैं । देखो पृ० (६४)

अब सातवें द्वीप भी से आगे अर्थात् शुद्ध स्वादूद समुद्र से आगे क्रोड़ों योजन भूमि बताना भारी भूल भान होती है । क्योंकि यहां तो लोकालोक बताया है, अभी स्वर्णमयी भूमि बताने लगे । आगे पृथिवी का समस्त विस्तार ५० क्रोड़ योजन बताया है । यथा-

एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः, स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः । द० ३८ अ० २० ॥

समस्त पृथिवी ५० कोड़ योजन है उस के चौथाई भाग में लोकालोक पर्वत है ॥

द० ३५ के कहे १५५५०००० योजन का विस्तार स्वादूद से बाहर का और इतनी ही भूमि सुमेरु पुष्कर के बीच की लगाने से ३१५००००० योजन होते हैं। यदि शिवतन्त्रोक्त ८३९००००० योजन को भी मिलालें तो भी ११५४००००० । योजन ही होता है ५० कोड़ तो फिर भी नहीं हुवे ॥

अण्डमध्यगतः सूर्य्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।
सूर्यागडगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥

अ० २० श्लोक ४३ श्रीधरी टीका–

अण्डमध्यगतः किन्तन्मध्यं तदाह द्यावाभूम्योः पूर्वोत्तर कपालयोर्यदन्तरं मध्यस्थानं सर्वतः पञ्चविंशतिकोट्यः ४३

अर्थात् पृथिवी और सूर्यमण्डल के बीच २५ कोटि योजन का फ़ासला है। टीकाकार भी सूर्य शब्द का अर्थ द्युलोक करते हैं, यह भूल है ॥

आगे अ० २१ द० ७ में ९५१००००० योजन का फ़ासला सूर्यमानवोत्तर की भूमि का बताया है, इस लिये परस्पर विरोध है ॥

अ० २१ उद २ में वर्णित है कि दिव् मण्डल व भूमण्डल द्विदल समान है, टीका ने लिखा है कि जैसे दोनों दल बराबर होते हैं, ऐसे ही भूमि के समान ही दिव् मण्डल भी है, जिसे खगोल कहते हैं। यथा द्विदलयोः इत्यादि ॥

समीक्षा–यह भारी भूल है, पृथ्वी से बड़े २ बहुत बड़े लोक सूर्यादि (द्युलोक) खगोल में विराजते हैं, फिर भूगोल के समान ही खगोल कैसे हो सकता है ॥

द० ३ में–स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत संज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमान यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि धत्ते ॥ ३ ॥
यदामेषतुलयोर्वर्त्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति ॥

अर्थात् सूर्य्य उत्तरायण दक्षिणायन में मन्द, शीघ्र, और समान गति से चलता है ॥३॥ जब मेष तुल राशि पर आता है तब दिनरात्रि समान होती हैं ॥

समीक्षा–सूर्य्य सदा एकसी गति चलता है, पृथ्वी भी सदा एक ही गति पर मलती है, यह तो पृथ्वी की गति से ऋतुभेद होता है, इसी से अयन भेद भी होता है। मेष तुल में रात्रिदिन समान बताना भी भारी भूल है, जब कि गवांर भी " १२ कन्या १२ मीन दिनरात बरोबर कीन " कहते हैं। सदा कन्या मीन के सूर्य्य में ही दिनरात बराबर होता है ४

" यदा वृषभादि पञ्चसु च राशिषु चरति तदा अहान्येव वर्द्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु" ॥४॥

अर्थ–जब सूर्य्य वृषभादि राशियों पर चलता है तब दिन बढ़ते हैं और रात्रि प्रतिमास १ घड़ी घटती है ॥

समीक्षा–यह भी भूल है क्योंकि उत्तरायण धन के सूर्य्य के ९। १० अंशों पर हो जाता है तभी से दिन बढ़ता है, ६ मास बढ़ता है, फिर ६ मास घटता है। और कन्या के १२ अंशों पर पूरा ३० घड़ी हो जाता है, दिनरात बराबर होते हैं इधर मीन के १० अंश से ऊपर ही दिनरात बराबर होजाते हैं यह गणित शास्त्र भागवतकर्त्ता को नहीं आता था, यही ज्ञात होता है। टीकाकार भी ऐसे ही हैं ॥

द० २ में जहां सूर्य त्रिलोकी को तपाता है, लिखा है, उस पर टीका भी शङ्का करती है कि सूर्य पाताल में प्रकाश नहीं पहुंचाता फिर व्यासदेव ने त्रिलोकी क्यों कहा। उत्तर भी खुद ही दिया है कि शुकदेव जी ने भूमि के नीचे के सात लोक की कथा नहीं कही है, पृथ्वी के ऊपर के तीन लोक मान कर उन का ही वर्णन है। धन्य! अ० २४ में तो पाताल के सातों पर्दों का वर्णन किया है ॥

सूर्य्य की दूरी

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्त्तनस्योपदिशन्ति ॥ ७ ॥ अ० २१

अर्थात् मानसोत्तर पर्वत के ऊपर ९ क्रोड़ ५१ लाख योजन दूर सूर्य घूमता है ॥

सूर्य की गति

यदा चैन्द्र्याःपुर्याः प्रचलते पञ्चदश घटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वययोजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥

जब इन्द्रपुरी से सूर्य चलता है तब १५ घड़ी में सवा दोक्रोड़ २२५००००० सवा बारह लाख कुछ ऊपर चलता है । सवा दो क्रोड़ में सवा बारह लाख भी मिलाने से २३७२५००० हुवे ॥ और भी—

एवं मुहूर्त्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोसौ चतसृषु परिवर्त्तते पुरीषु ॥ १२ ॥

इस प्रकार दो घड़ी में ३४ लाख ८ सौ योजन से अधिक सूर्यरथ चलताहै।

समीक्षा-इस हिसाब १५ घड़ी में २५५०६००० योजन होता है अब पाठक विचारें कि दण्डक १० में २३७२५००० ही होता था ॥

सूर्य रथके धुरे

द० १४ के टीका में दो धुरे बताये हैं, एक जो सुमेरु से मानसोत्तर तक फैला है, वह १५५५०००० योजन का है, दूसरा इस से चौथाई है (यह लेख दूरी के हिसाब लगा कर लिखा है जो कि अ० २० द० ३५ में बता आये हैं)

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभाग विशालस्तावान्० ॥ द० १५

सूर्यरथ ३६ लाख योजन चौड़ा ९ लाख योजन ऊंचा है ॥

समीक्षा-अ० २० श्लो० ४३ में २५ क्रोड़ ऊंचाई लिखी है क्या सुमेरु पर धरे धुरे से और ९ लाख ऊंची चोटी से भी अधर हो सूर्य चलता है, जो २५ क्रोड़ लिख चुके हैं ? द० १९-

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १९ ॥

अर्थात् एक लाख साढ़े नौ करोड़ योजन पृथ्वीचक्र के घूमने के लिये एक क्षण में २००० योजन और २ कोश चलता है ॥ भाष्यटीका ने ९०१५०००० योजन अर्थ इस दण्डक का जाने कैसी किया है ॥

चन्द्रलोक वर्णन अ० २२

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्ष योजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य स० ॥ ८ ॥

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य से ऊपर लाख योजन ऊंचा है ॥

समीक्षा- ग्रहलाघव तथा सिद्धान्तशिरोमणि और योपियन खगोल विद्याविद् विद्वानों के सिद्धान्तानुसार भी चन्द्रलोक पृथ्वी के समीप और सूर्य से बहुत नीचे है परन्तु भागवतकर्त्ता को क्या ख़बर, ऐसी भूल क्यों हुई । "अर्काद्धश्चन्द्रकक्षा" वासना भाष्ये ॥

२४ वें अध्याय में शिशुमार चक्र का वर्णन है जिस में सब ग्रहों का निवास, पूंछ, कोख, छाती, मस्तकादि लिखा है ॥

ग्रहण विचार

सूर्य से नीचे १० हज़ार योजन राहु है, ऐसा किसी का मत है । यथा—

अधस्तात् सवितुर्योजनायुतेस्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके ॥१॥

यदद्स्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतोयोजनायुतमाचक्षते, द्वादशसहस्रं सोमस्य, त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद् वैरानुबन्धः सूर्यचद्रमसावभिधात्रति ॥ २ ॥

टी०—राहु के अधोभाग में रहकर सूर्य तपता है, सूर्य का विस्तार १० हज़ार योजन, चन्द्रमा का १२ हज़ार योजन, राहु का १३ हज़ार योजन का विस्तार है वैर याद कर ग्रहण में राहु सूर्य चन्द्र की ओर को भागता है ॥

समीक्षा- हम इस प्रकरण में इतना ही लिखेंगे कि ज्योतिः शास्त्र से भागवत का कितना भेद है । ग्रहलाघव में स्पष्ट है कि—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा:

अर्थात् सूर्य को चन्द्रमा ढकता है और चन्द्रमा को पृथ्वी की छाया ढापती है, तब ग्रहण होता है । पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा है । चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है । देखो भास्कर प्र० उत्तरार्ध पृ० ८० । ८१ । ८३ ॥

अध्याय २५—

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते ॥ १ ॥

पाताल के मूल में ३० हज़ार योजन विस्तार से शेष जी संकर्षण नामी रहते हैं १

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्त्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

अनन्त नामक जिस शेष के हज़ार शिरों में एक शिर के ऊपर यह भूमिमण्डल सरसों के दाने के समान जान पड़ता है ॥ २ ॥

समीक्षा—जिस का ३० सहस्र योजन विस्तार बता चुके हैं उस का नाम अनन्त कहना उचित नहीं है, और उस के हज़ार शिर में एक शिर ३० योजन में को हुवा, फिर पृथ्वी को सरसों के सा दाना बताना कैसी विद्वत्ता है। सरसों का दाना अर्थ भी दाना पं० ज्वालाप्रसाद का सम्मत भाषाटीका में लिखा है। ३० योजन के शिर पर ५० क्रोड़ योजन की भूमि को सरसों के दाने समान बताने मात्र से ही बुद्धि की बानगी मिलती है। फिर यह शेष काहे पर बैठे या खड़े हैं। यह भूमि कहां है ?

—*—

अथ षष्ठस्कन्ध समीक्षा

अ० १ में श्लो० २१ से अजामिल का उपाख्यान है॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः।
नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥२१॥
बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः। इत्यादि॥

अर्थात् कान्यकुब्ज देश में कोई अजामिल नामक दासीपति कुकर्मी था, जो जेल में जूवे में छलछिद्र में चोरी में गुज़र करता था, १० बेटे थे, छोटे का नाम "नारायण" था। सदा उसी में प्यार रखता था, मरते समय यम के दूतों को देख "(पुत्र) नारायण!" कह चिल्लाया तब विष्णु के दूत जल्दी आगये, यम के दूतों को धमकाने लगे कि तुम कौन हो, क्यों खड़े हो, क्यों आये हो। यमदूतों ने कहा—यह पापी महापापी है, वैदिक धर्म का विरोधी है। विष्णु के दूतों ने कहा—(अ० २ में) अहो! न्यायासन पर ही अन्याय हो तो प्रजा कहां जावे? यमराज ऐसा दण्ड देते हैं, इसने नारायण का नाम लिया है, हम ले जावेंगे और लेगये॥

समीक्षा—पाठक स्वयं विचारें, कैसा न्याय है। विष्णु की क़ानून का आगे नमूने को १ श्लोक देते हैं—

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥

अर्थात् चोर, शराबी, मित्रद्रोही, गुरुस्त्रीगामी, स्त्री राजा पिता और गौ को मारनेहारा और भी जो पापी हैं विष्णु के नाम लेनेमात्र से शुद्ध हो जाते हैं ॥१०॥ क्या अच्छा प्रायश्चित्त है। अध्याय ३ में यम के दूतों ने यम से कहा कि कितने न्यायकर्त्ता संसार में हैं ? इस में बड़ा गड़बड़ हो जाता है। हम तो एक आप ही को न्यायकारी जानते थे। तब यमने कहा-नहीं मुझ से बड़े और विष्णु हैं ॥

अ० ५ में नारदजी ने दक्ष के पुत्रों को ज्ञानोपदेश दिया, दक्षने शाप देदिया। भली गुरुदक्षिणा मिली ॥

अ० १८ में इन्द्र सौमी दिति के गर्भ में घुस गया ७ टुकड़े करे, फिर प्रत्येक के सात २ कर ४९ टुकड़े करदिये, गर्भ रोया, इन्द्र ने कहा 'मत रोओ' इस प्रकार ४९ मरुत् हुवे ॥

-***-

अथ सप्तमस्कन्ध समीक्षा-

अ० १ श्लो० २५-३० तक लिखा है कि काम, स्नेह, वैर भावादि किसी प्रकार से भी कृष्ण के याद रखने से मुक्ति हो जाती है ॥

समीक्षा-हमारी सम्मति में तो ईश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासनादि सात्त्विक शुभ कर्मों से ही सुख होता है। यदि कृष्णादि को कंसादि दैत्य ईश्वर मानते जानते, तो लड़ते ही क्यों। कंसादिकों ने कभी भी ईश्वर मान कर वैर नहीं किया। विना ईश्वरीयज्ञान के मुक्ति नहीं होती। वेद कहते हैं-

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

प्रथम अध्याय में विष्णु के द्वारपालोंको शाप हुवा कि राक्षस हो जावो, फिर प्रसन्न हो कर कह दिया कि यदि वैर करोगे तो ३ जन्मों में मुक्ति पाजाओगे श्लो० ३१-जब विष्णु के मारने मात्र से पवित्र हो मुक्ति पाजाते थे तो हिरण्याक्ष

हिरण्यकशिपु तो सृष्टि के आरम्भ सत्ययुग में ही हुवे होंगे, मरकर मुक्ति पाये या कहीं नरक स्वर्ग में रहे या तभी रावण कुम्भकर्ण बन गये ? रावण कुम्भकर्ण त्रेता में मारे गये और वहां भी उन का मुक्ति पाना वर्णित है फिर द्वापरान्त में शिशुपाल दन्तवक्त्र कैसे आ बने ? क्या मुक्ति से भी आप के मत में प्रत्येक युग में ही लौट आते हैं ? यह २८ वां कलियुग है, इस से पूर्व ५००० वर्ष ही तो शिशुपालादि को मरे हुवे हैं, फिर पौने दो अर्ब वर्ष तक इमन्वन्तर में क्या इन पार्षदों के ३ जन्म ही हुवे ! या प्रत्येक युग में मर २ के जी जाते हैं ! पौराणिक विश्वास है कि प्रत्येक त्रेता में राम, द्वापर में कृष्ण होते हैं और रावण कंसादि को मारते हैं। अ० १० श्लो० १७ से २१ तक कहा है कि हे प्रह्लाद ! २१ पीढ़ी तेरी पवित्र हो गईं, श्लोक २९ में ब्रह्मा से नृसिंह ने कहा कि ऐसा वरदान न दिया करो जैसा हिरण्यकशिपु को देदिया। इस से क्या विष्णु ब्रह्मा रुद्र एक सिंह हो सकेंगे ?

——*०*——

अथाष्टमस्कन्ध समीक्षा

अ० ६ में एक स्त्री का अवतार लिखा है, उसी ने देव दैत्यों को समुद्र मथन का उपदेश दिया है। क्या यह २५ वां अवतार है ? और (न जाने यहां स्त्रीरूप की क्या आवश्यकता थी) " मन्दर " पर्वत की रै वासुकि सर्प की नेती बना कर देवासुरों ने समुद्र मथा, मन्दर को उठा लाये, दैत्य देव दबने लगे, मरते देख भगवान् आये, उन को जिवाया, हाथ पांव कोड़े, स्वयं पर्वत को गरुड़ पर धर लाये। इत्यादि असंगत असम्भव कथा भरी हैं। अ० ७—पहाड़ नीचे को सरकने लगा, सब कछवा बन नीचे बैठ गये ॥ ८ ॥ लाख योजन का पहाड़ पीठ पर धर लिया। यथा—

दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनं प्रस्तारिणा द्वीपइवापरोमहान् ९

पर्वत खुजातासा ज्ञात हुवा है ॥

अ ७ में समुद्र मथन से रत्नरूप घोड़ा, हाथी, अप्सरा, विष, मदिरा, धन्वन्तरि वैद्य, सब निकले लिखे हैं। श्लो० ४१ में मोहनी स्त्री रूप भगवान् का अवतार लिखा है ॥

स्तनभारकृशोदरीम् ४३

इत्यादि रूप का वर्णन है। दैत्यदल कामवश मोहागया, अमृत का बांट छल से देवतों को दे दिया ॥

समीक्षा-यह धर्मरक्षार्थ कैसा अवतार। किस धर्म की रक्षा की ? श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥

जब धर्म की ग्लानि, अधर्म की वृद्धि होती है तब अवतार धर्मरक्षार्थ होता है। मोहनी अवतार छलार्थ हुवा॥ अध्याय १२-

मोहनी रूप पर शिव जी मोहित होगये। यथा—शिव ने सुना कि मोहनी रूप ने दैत्यों को मोहित कर देवों को अमृत दिलाया था, बैल पर चढ़कर विष्णु के पास गये, स्तुति की कि महाराज! वह रूप मुझे भी दिखादो। भगवान् छिप गये और बगीचे में एक उत्तम स्त्री टहलती फिरती देखी-

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ॥१८॥

देख कर निर्लज्ज होगये, विह्वल हो उस के पास पहुंचे॥ २५॥

तस्यानुधावतोरेतश्चस्कन्दाऽमोघरेतसः ॥ ३२॥
यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३॥

शिवजी के भागते समय वीर्यस्खलित हो जहां २ भूमि में गिरा, वहां २ नदी पहाड़ वन उपवन सब सोने चान्दी के क्षेत्र होगये॥

समीक्षा-इस कथा से शिवजी को अज्ञानी सिद्ध किया है, इस लिये मान्य नहीं हो सकती। न सोने चांदी के कहीं क्षेत्र ही हैं। वलायत में सोने चांदी की बहुत खानि हैं, क्या वलायत में ही शिवजी भागे थे ?

छमासा लड़का (वामन)

अ०१७ में कश्यप जी ने दिति को पयोव्रत बताया है कि फाल्गुन शुक्ला १ से १३ तक व्रत करे। वही व्रत दिति ने किया, जिस से वामन अवतार हुवा है। यह अ० १८ में वर्णित है॥

समीक्षा-ध्यान देने योग्य बात है कि फा० शु० १३ को व्रत समाप्त हुवा तो फिर भाद्र शु० १२ को वामन का जन्म हुवा है, पूरा १ दिन कम ६

मास में ही वामन का जन्म हुवा होगा। वामन जी ने ३ पग में तीनों लोक नाप लिये, इत्यादि प्रसिद्ध बुद्धिविरुद्ध कथा का यहां उल्लेख कर ग्रन्थ नहीं बढ़ावेंगे॥

—※—

अथ नवमस्कन्ध समीक्षा

"जगत् में यह ईश्वरीय नियम प्रचलित है कि स्त्री पुरुष नहीं बन सकी और पुरुष स्त्री नहीं बन सकता है परन्तु पुराण वालों ने इस ईश्वरीय नियम को भी उलट दिया है, श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध अध्याय १ में लिखा है कि सूर्यवंश के आदि पुरुष महाराज वैवस्वत मनु के जो इक्ष्वाकु आदि १० पुत्र प्रसिद्ध हैं (वैवस्वत मनु के यह दश पुत्र थे-इक्ष्वाकु, नृग, शर्यांति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि) उन की उत्पत्ति में पूर्व वैवस्वत मनु ने महर्षि वशिष्ठ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया परन्तु उस यज्ञ के प्रताप से मनु की स्त्री के गर्भ से इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई, कन्या को देख के मनु को बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ और उन्हों ने वशिष्ठ से कहा—

भगवन् किमिदं जातं कर्म्म वो ब्रह्मवादिनाम्।
विपर्य्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया॥१७॥
यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः।
कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव॥१८॥
तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान् प्रपितामहः।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे नृपनन्दनम्॥१९॥
एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः।
तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा॥२०॥
एवं व्यवसितो राजन् भगवान्स महायशाः।
अस्तौषीदादिपुरुषम् इलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥२१॥
तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः।
ददाविलाभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः॥२२॥

इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि वैवस्वत मनु के जब इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई तब मनु ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि यह उलटा कार्य क्यों हुआ ? अर्थात् मैंने जो पुत्र की प्राप्ति के वास्ते यज्ञ किया था उस से पुत्री उत्पन्न क्यों हुई ? आप सब लोग वेद (मन्त्र) वैदिक कर्म और ब्रह्म के जानने वाले हैं, आप के यज्ञ से ऐसा उलटा फल होना उचित नहीं है। वशिष्ठ महाराज ने उत्तर दिया कि होता के उलटे संकल्प से यह उलटा फल हुआ है परन्तु मैं अपने तेज से तुम को सुपुत्र बनाऊंगा। ऐसा कहके वशिष्ठ ने विष्णु की स्तुति की, उस से प्रसन्न होके जो विष्णु ने वशिष्ठ को वर दिया उस ही वर के प्रताप से मनु की पुत्री इला पुरुष होगई और उस का नाम सुद्युम्न रक्खा गया॥

इन महाराज सुद्युम्न की वही गति हुई जैसी एक चुहे की कथा हितोपदेश में लिखी है। यह बनावटी कथा है कि किसी नगर के समीप एक ऋषि रहा करते थे, उन के आश्रम पर एक चुही का बच्चा फिरा करता था, एक दिन चुही के बच्चे को खाने के निमित्त एक बिल्ली झपटी, ऋषि ने दया करके चुही के बच्चे से कहा कि "त्वमपि मार्जारोभव" इतना कहते ही चुही का बच्चा बिलाव बन गया, किसी दिन उस बिलाव पर कुत्ते ने हमला किया, ऋषि ने उसे बिलाव से कुत्ता बना दिया, इस ही प्रकार से चुही के बच्चे को बढ़ाते बढ़ाते सिंह रूप में परिणत कर दिया, चुही का बच्चा जब सिंह बनकर निर्भय विचरने लगा तब वन के अन्य सिंह उस का यह कहके निरादर करने लगे कि " रे ! तू तो वही चुही का बच्चा है जिसे ऋषि ने बिलाव से बनाया था परन्तु हम लोग असली सिंहवंश के सिंह हैं, तू हमारी बराबरी क्या करेगा " इस अपमान को कृत्रिम सिंह न सहसका और समझा कि जब तक यह ऋषि जियेगा तब तक मेरा ऐसे ही अनादर होता रहैगा, इस से प्रथम ऋषि को मार डालना चाहिये, यह विचार कर ज्योंहीं वह ऋषि की ओर चला त्योंहीं ऋषि ने उस के बुरे अभिप्राय को समझ के कह दिया " पुनर्मूषिकोभव " बस इतना कहते ही वह फिर चुहा होगया। ऐसे ही सुद्युम्न फिर भी स्त्री होगया॥

स एकदा महाराज ! विचरन् मृगयां वने ।

वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम् ॥२३॥

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ।
दंशितोनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥
स कुमारो वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह ।
यत्रास्ते भगवान् शर्वो रममाणस्सहोमया ॥२५॥
तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ।
अपश्यत् स्त्रियमात्मानम् अश्वं च वड़वां नृप ॥२६॥
तथा तदनुगास्सर्वे आत्मलिङ्गविपर्य्ययम् ।
दृष्ट्वा विमनसोभूवन् वीक्ष्यमाणाः परस्परम् ॥२७॥

एक समय सुद्युम्न अपने मन्त्री वर्ग को साथ लेके और धनुर्बाण लेके उत्तर दिशा में शिकार खेलने को गया। राजकुमार सुद्युम्न एक मृग के पीछे जाते जाते सुमेरु पर्वत की तलहटी के वन में पहुंच गया, इस ही वन में महादेव जी पार्वती के सहित विहार किया करते थे। उस वन में घुसते ही राजकुमार सुद्युम्न स्त्री-और उस का घोड़ा घोड़ी होगया, उस के सम्पूर्ण साथी भी स्त्री होगये और आश्चर्य से युक्त होके एक दूसरे को देखने लगे। इस पर भी आश्चर्य यह है कि वह राजकुमार एक महीना स्त्री रहता था और एक महीना पुरुष रहके राज्य के कार्य करता था। इस राजा के स्त्री शरीर से सन्तान हुई और पुरुष शरीर से भी वंश चला, इस ही कथा में लिखा है कि महादेव के शाप से वह वन ऐसा होगया था कि जो पुरुष उस वन में जाय वही स्त्री होजाय, श्रीमद्भागवत नवमस्कन्ध के प्रथम अध्याय ही में लिखा है ॥

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तस्समुपागमन् ॥२९॥
तान्विलोक्याम्बिका देवी विवस्त्रा व्रीड़िता भृशम् ।
भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्य्यधात् ॥३०॥
ऋषयोपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ।
निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद्भवेदिति ॥३२॥

इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि एक समय ऋषि लोग महादेव के दर्शनार्थ वक्ष वन में गये, उस समय महादेव पार्वती के साथ विहार कर रहे थे, ऋषियों को आता देख कर पार्वती अत्यन्त लज्जित हुई क्योंकि वह वस्त्र हीन थीं, पार्वती ने महादेव की गोद से उठ कर वस्त्र पहिरा, ऋषि लोग भी महादेव पार्वती के विहारसमय को जान कर वहां से लौट आये और नरनारायण के आश्रम को चले गये तब महादेव ने पार्वती को प्रसन्न करने के निमित्त कहा कि आज से जो कोई इस स्थान में आवेगा वह स्त्री होजायगा। इस भागवत के बनाने वाले लाल बुझक्कड़ से कोई पूछे कि उस स्थान में महादेव जी पुरुष क्योंकर रहे? यदि महादेव जी ऐसा कहते कि "मां विना योविशेदेतत्" तब कुछ ठीक भी होता। इस के अतिरिक्त जिन महादेव जी को पुराण वाले सर्वज्ञ मानते हैं उन को यह भी मालूम न हुआ कि ऋषि लोग हमारे दर्शन को आते हैं। हम उनके आने से पूर्व ही सावधान होजांय॥

राजा सुद्युम्न की असम्भव कथा की समाप्ति इतने ही में नहीं हुई वरन चन्द्रमा के पुत्र बुध से उस का गान्धर्व विवाह कराया गया और उस के उदर से पुरूरवा की उत्पत्ति भी हुई और एक पुत्र उत्पन्न हो जाने के बाद स्त्रीरूपी सुद्युम्न ने अपने हर्त्ता कर्त्ता और विधातारूपी गुरु वशिष्ठ को फिर याद किया याद करते ही वशिष्ठ जी आ मौजूद हुए और सुद्युम्न की दशा को देख कर अत्यन्त दुःखी हुए फिर वशिष्ठ ने महादेव को प्रसन्न करने के निमित्त घोर तप किया, उन के तप से प्रसन्न होके महादेव ने दर्शन देके यह वर दिया कि-

मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोवतु मेदिनीम् ॥३३॥

सुद्युम्न एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहा करेगा और इच्छापूर्वक पृथ्वी की रक्षा करेगा॥

आचार्य्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।
पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दत् स तं प्रजा ॥३४॥

इस प्रकार से आचार्य की कृपा से सुद्युम्न को पुरुषत्व प्राप्त हुआ और उस ने पृथ्वी का पालन किया परन्तु प्रजा उस से प्रसन्न न रही, सुद्युम्न के पुरुष रूप से तीन और स्त्री रूप से एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुताश्रयः ।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मतत्पराः ॥ ३४ ॥

उस सुद्युम्न के उत्कल, गया और विमल ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । ये तीनों दक्षिण देश के धर्मपरायण राजा हुए ॥

अब पाठक स्वयं विचार सक्ते हैं कि इस क़िस्से से अलिफ़लैला के क़िस्से अच्छे हैं वा नहीं, चिकित्सा शास्त्र के प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि स्त्री के शरीर की धातु तथा शिरा और अस्थि आदि पुरुष के शरीर की धातु और शिरा आदि से अत्यन्त भिन्न हैं, प्रत्येक महीने में उन का बदल जाना सर्वथा असम्भव है ॥

श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध अ० ३ में यह अद्भुत कथा लिखी है ॥

उत्तानबर्हिरानर्त्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्य्यातेरभवन्पुत्रा आनर्त्तादेवतोभवत् ॥ २७ ॥
सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोभुङ्क्तविषयानानर्त्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥
तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्म्निज्येष्ठमुत्तमम् ।
ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥
पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ।
आवर्त्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥३०॥
तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥
अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न मृण्महे ॥३२॥

कालोभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।
तद् गच्छ देवदेवांशो नरदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥
कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।
भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥ ३४ ॥
अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्त्तनः ।
इत्यादिष्टोऽभिवाद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥
त्यक्तं पुण्यजनत्रासात् भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ।
सुतां दत्वाऽनवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।
बदर्य्याख्यं तपो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥३६॥

इन सब श्लोकों का अभिप्राय यह है कि राजा शर्याति के उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । आनर्त्त का पुत्र रेवत हुआ जिसने समुद्र के बीच में कुशस्थली नगरी बसाई और आनर्त्त आदि देशों का राज्य भोगा । राजा आनर्त्त के १०० पुत्र हुए, इन में ककुद्मी सब से बड़ा था, राजा ककुद्मी अपनी पुत्री रेवती को साथ लेके आदिदेव ब्रह्मा के पास गया, ब्रह्मा की सभा में उस समय गन्धर्व गान कर रहे थे इस कारण राजा ककुद्मी क्षणमात्र (मौक़ा पाने के वास्ते) चुपरहे, जब गन्धर्व गाचुके तब राजा ककुद्मी ने ब्रह्मा से अपना अभिप्राय कहा (पूछा कि इस कन्या के योग्य वर बतलाइये) ब्रह्मा ने हंस कर कहा कि राजन् ! तुमने जिन राज-पुत्रों के साथ अपने हृदय में इस कन्या का विवाह करना विचारा था उन के पुत्र पौत्र और नातियों का तो क्या उन के गोत्रों का भी अब चिह्न नहीं रहा है, जितनी देर तुम यहां खड़े प्रतीक्षा करते रहे उतने काल में चारों युग २७ बार व्यतीत हो चुके, अब संसार में पृथ्वी का भार उतारने को स्वयं भगवान् ने अवतार लिया है । तुम उन्हीं नररत्न बलराम से इस कन्यारत्न का विवाह करदो, ब्रह्मा की इस आज्ञा को सुन के राजा ककुद्मी अपने नगर में आये और अपने नगर को गन्धर्वों के भय से तथा स्वजनशून्य जान के त्याग दिया और बलराम के साथ रेवती का विवाह करके आप बदरिकाश्रम तप करने को चलागया ॥

पाठक ! विचारिये तो सही कि मुसलमानों के बहिश्त में जो हूरें रहती हैं उन को बुढ़ापे का दुःख नहीं होता, परन्तु वह बहिश्त से ज़मीन पर नहीं आती हैं और न बहिश्त में गये आदमी यहां फिर कर आते हैं किन्तु पुराण वालों के बहिश्त (ब्रह्मलोक) से राजा ककुद्मी अपनी कन्या के सहित लौट आये और रेवती को वृद्धावस्था न आई। ख़ैर यह भी सही परन्तु उस विवाह में ज्योतिषियों ने गोत्रादि का मिलान क्योंकर किया था? और बलराम से युगों बड़ी रेवती का विवाह कैसे काशीनाथ के शीघ्रबोध से शुद्ध हुआ? क्या कोई पौराणिक पण्डित कह सक्ता है कि यह विवाह जन्म कुण्डली के मिलान से हुआ था? क्या २७ चौकड़ी युग बीतजाने पर भी सब ग्रहों की चाल ज्यों की त्यों बनी रही थी? यदि नहीं तो भारतधर्ममहामण्डल रेवती और बलराम के विवाह को धर्मविवाह कह सक्ता है?

नरबलि

हा! शोक!! पुराणों ने बलिदान में पशुओं पर ही सन्तोष नहीं किया मनुष्यबलि और वह भी पिता के हाथ से पुत्रों का बलिदान (कटवाना) बखाना है॥

राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व की कथा पाठकों को नाटक नाविलों से ज्ञात हुई होगी, सत्यवीर राजा हरिश्चन्द्र का यश संसार में व्याप्त है, परन्तु भागवत के नवमस्कन्ध अ० ७ में लिखा है कि वह मिथ्यावादी था, उस हरिश्चन्द्र के सन्तान नहीं थी, उस ने वरुणदेव से प्रार्थना की कि मेरे पुत्र हो तो तेरी भेंट कर दूं। पुत्र रोहिताश्व हुवा, तब वरुण आया कि भेंट कर, राजा ने कहा, अग्नी (पशु) मेरे पुत्र का नामकरण नहीं हुवा, नामकरण होने पर भेंट दूंगा॥१०॥ फिर कहा दान्त निकलने पर, तीसरीवार वरुण आया, कहा दूध के दान्त नहीं टूटे हैं, चौथी वार आया, तब कहा सन्नाह पहिर योद्धा हो जावे तब दूंगा। ऐसे ही टालता रहा, पुत्र ने जब सुना, घर से निकल गया। हरिश्चन्द्र ने अन्य पुरुष से पुरुषमेध किया। यथा-

ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥ २१ ॥

—*—

अथ दशमस्कन्धसमीक्षा

यह भी अनेक लोगों को विदित नहीं है कि पुराण वाले "ईसामसीह"के समान विना पितृमातृसंयोग के बलराम की उत्पत्ति मानते हैं, हम नहीं जानते कि बलदेव की उत्पत्ति की कथा बायबिल को देख के गढ़ी गई है वा बायबिल के बनाने वाले ने भागवत को देख के ईसामसीह के जन्म की असम्भव कहानी बनाई है, जो हो परन्तु इस में सन्देह नहीं है कि इस असम्भव कहानी का कुछ भी सिर पैर नहीं है, इस बात को कौन सा मनुष्य स्वीकार कर सकता है कि एक स्त्री का गर्भ (गर्भस्थमांसपिण्ड) दूसरी स्त्री के गर्भ में चलागया ॥ भागवत के दशमस्कन्ध अ० २ में लिखा है-

हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥
सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥
भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥
गच्छ देवि! व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ॥ ७ ॥
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ।
देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ ८ ॥
तत्संनिकृष्य रोहिण्या जठरे संनिवेशय ।
गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणम्भुवि ॥
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥
सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥ १४ ॥
गर्भं प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥

इन श्लोकों का तात्पर्य यह है कि, उग्रसेन के पुत्र कंस ने जब देवकी के ६ पुत्र मारडाले तब विष्णु का शयनस्थान जिस को अनन्त (शेषनाग) कहते हैं वह सातवें गर्भ में आया, देवकी का वह सातवां गर्भ हर्ष और शोक का बढ़ानेवाला हुआ, तब जगद्व्यापक भगवान् (विष्णु) ने अपने दास यदुवंशियों को कंस के डर से व्याकुल देख के योग माया (देवी) को आज्ञा दी कि हे देवी ! तुम ग्वाले और गौओं से भरे हुए व्रज में जावो, गोकुल में वसुदेव की स्त्री रोहिणी रहती है, उस के उदर में मेरे निवासस्थान शेष को देवकी के उदर से निकाल के पहुंचादो (वा स्थापन करदो) * * गर्भ अवस्था में जो वह खींच कर दूसरे गर्भ में पहुंचाये गये इस से उन का नाम संकर्षण, लोक में रमण करने से राम और अत्यन्त बलवान् होने से बल जगत् में प्रसिद्ध होगा। योगमाया (देवी) भगवान् से ऐसी आज्ञा पाकर और उसे स्वीकार करके पृथ्वी में गई और वैसे ही कार्य किया। योगमाया ने जब देवकी के उदर से गर्भ को निकाल के रोहिणी के उदर में पहुंचा दिया तब शहर के रहने वालों ने ओः !! गर्भपात होगया, ऐसा कहके शोक किया॥

अब इस में प्रश्न यह है कि प्रत्येक स्त्री का गर्भाशय नसों से ऐसा जकड़ा रहता है कि उस के निकल जाने से कोई स्त्री नहीं बचसक्ती है, यदि गर्भाशय को छोड़कर योगमाया ने देवकी के गर्भ को रोहिणी के गर्भ में पहुंचाया तो उस का पुनः संस्थापन क्योंकर हुआ ? यदि गर्भाशय के सहित पहुंचाया तो देवकी क्योंकर जीवित रही, यह पौराणिकों की लीला ईसाइयों की लीला से किसी अंश में कम नहीं है॥

अब एक और अद्भुत कथा सुनिये-बलराम की स्त्री रेवती न मालूम कितने करोड़ वर्षों की थी, लिखते हंसी आती है कि जब बलदेव के पड़दादा का भी जन्म नहीं था, तब रेवती ब्रह्मा की सभा में बैठी हुई गन्धर्वों के गीत सुन रही थी॥

१-सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने पूतनावध का खण्डन किया ही है कि उस का शरीर कोसों के वृक्षों का नाश कर गिरा॥

२-मट्टी खाते समय श्रीकृष्ण ने माता को तीन लोक मुख में दिखा दिये। अ० ९ में लिखा है॥

३-अ० १९ में अग्नि का प्राशन (खाना) असंभव है॥

४-अ० २२ में गोपी वस्त्रहरण अन्याय है॥

५-अ० २४ में इन्द्रयाग को श्री कृष्ण ने रोका। यज्ञ न करने देना नास्तिकता है॥

६-अ० २९-३३ तक का रासलीला में कृष्ण को स्त्रैण बताना दोष है॥

केवल एक श्लोक लिख कर ही भक्तिभाव, कामीपन का नमूना दिखा देंगे। कौन ऐसा पुरुष भक्त कहा सकता है जो अपने उपास्यदेव पर ऐसा दोष धरे। इस से हम को शङ्का है कि ऐसी २ कथा श्रीकृष्ण के शत्रुओं की रचना ही हो सकती हैं-

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः। चित्रं न तत्खलुरमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः॥ श्लोक ४० अ० ५५॥

अर्थात् पिता कृष्ण के समान प्रद्युम्न जी का रूप जान उन की माता रुक्मिणी आदि भी एकान्त में सेवन को त्यार हुईं, तब अन्य नारियों की तो कथा ही क्या है? यह आश्चर्य नहीं कामदेव ऐसा ही बली है॥

इसी को हरिवंश भविष्यपर्व अ० १०३ में भी लिखा है:-

प्रद्युम्न उवाच-

मातृभावं परित्यज्य किमेवं वर्त्तसेऽन्यथा।
अहो दुष्टस्वभावाऽसि स्त्रीत्वे चापल्यमानसा॥१८॥

प्रद्युम्न रुक्मिणी को अपने ऊपर मोहित जान कहते हैं कि मातृभाव त्याग कर ऐसे वर्त्ताव क्यों करती हो? अहो स्त्रियों का स्वभाव बड़ा दुष्ट होता है, इति॥

—*—

श्रीकृष्ण की सन्तान

हरिवंश भ० पर्व अ० १०३ में-

दशायुतसमाख्याता वासुदेवस्य वै सुताः॥ २१॥

दशायुत का अर्थ एक लक्ष होता है, क्योंकि अयुत दश हज़ार को कहते हैं। दशगुणा करने से लक्ष होते हैं॥

भागवत अ० ६१ में १६००० रानियों के प्रत्येक के १०। १० पुत्र लिखे हैं यथा-

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाऽबलाः ।
अजीजनन्ननवमात् पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥

१६ सहस्र गोपीगण से प्रत्येक में १० सन्तान हों तो एक लाख साठ हज़ार पुत्र हुवे। यहां हरिवंश से विरोध होता है, वहां एक लक्ष ही लिखा है॥

(द्यूत) जुआ

अ० ६१ में श्लोक २१ से ३१ तक बलदेव जी की द्यूत क्रिया का वर्णन है। जहां लिखा है-"अक्षैर्दीव्यन्ति राजानः" इत्यादि ॥

मद्यपान

अ० ६५ में बलदेव जी वृन्दावन आये हैं, वहां दो मास ठहरे।

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

वन में मीठी मद्य की गन्ध लेते २ स्त्रियों सहित मद्य पिया ॥

समीक्षा-श्रीकृष्णचन्द्र को १६ सहस्र रानियों से कामक्रीड़ा करना बलदाऊ जी को मद्यप और जुवारी बताना अनर्थ है। भौमासुर की जीती १६००० राजकन्याओं से विवाह करना अ० ५९ में स्पष्ट लिखा है ॥

—※—※—

अथ एकादशस्कन्धसमीक्षा

कृष्ण को कुलघ्नता दोष-

संहर्त्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ अ० १

अर्थात् स्वकुल संहार करने की कृष्ण ने इच्छा की ॥

अ० २ प्रियव्रत के प्रपौत्र ऋषभदेव को वेदपारग ईश्वरावतार लिखा है परन्तु स्कन्ध ५ अ० ३ में इन्हें जैनमतप्रवर्त्तक लिखा है। देखो भाषा टीका बम्बई का छापा वेंकटेश्वर प्रेस ॥

अ० ५ में कलियुग की महिमा लिख कर यहां तक लिखा है। यथा-

कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥

सत्युग के लोग इस कलियुग में जन्म चाहते हैं, क्योंकि कलियुग में नारायणपरायण होंगे । द्रविड देश में ताम्रपर्णी नदी के पास के लोग कावेरी के तट के जलपान करते हैं, ये प्रायः भक्त होंगे, फिर बुराई क्यों? अ० ६ श्लोक २५ में श्रीकृष्ण की आयु कुल १२५ वर्ष की बताई है। यदि द्वापर में होते तो १००० की होती । अ० ३० यादव शरीरत्यागार्थ व्रत नियम पूजन करने को चले । " यदुवृद्धा मधुद्विषः " बूढ़े यादव शराब को बुरा जानते थे । यह श्लोक १० में है परन्तु १२ वें श्लोक में महापान का वर्णन है । यथा–

ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ।
दिष्टविभ्रंशितधियो यद्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

वन में जाय बुद्धि भ्रष्ट हुई, खूब शराब पी लई । परन्तु यह ठीक बात नहीं है कि जो संसार के उद्धार व धर्म के प्रचारार्थ जन्म लें, वही अपने कुल का ही नाश कराने को अधर्म से न रोकें अपितु प्रवृत्त करें । यथा–

कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥१३॥

कृष्ण की माया से मूर्ख हो खूब शस्त्र बजे, लड़ाई हुई ॥

-*-*-

अथ द्वादशस्कन्धसमीक्षा

अ० १ में भविष्यत् कथा कहते हुये श्लो० २८ में कहा है:–

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश च पुक्कसाः ।
भूयो दश गुरुंडाश्च मौना एकादशैव तु ॥२८॥

८ पीढी राजा मुसलमान, १४ पुश्त पुक्कस, फिर १० कुल गुरुण्डों के और ११ मौनों के राज्य करेंगे ॥

समीक्षा–यदि यवन शब्द का मुसलमान अर्थ करें तो उन की ८ बादशाहतें भारत में हुईं या नहीं इस पर विवाद नहीं परन्तु मुसलमानों के बाद १४ पुक्कसों की बादशाहत कौन सी हुई ?

अब अंग्रेज़ों को पुक्कस नहीं कह सकते। यहां सिक्खों का वर्णन नहीं। गुरुनानक का नाम भविष्य पुराण में अवश्य आया है परन्तु भागवत में कहीं भी न होना सिद्ध करता है कि उस समय मुसल्मान तो थे परन्तु सिक्ख नहीं हुये थे। अ० २ में–

त्रिंशद्द्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

२०। ३० वर्ष की परमायु कलियुग में मनुष्यों की होगी। यहां हम यह भी बताना उचित समझते हैं कि मनुष्यों की आयु १०० वर्ष की वेदविहित है, चारों युगों में १०० वर्ष की आयु होती है, हां यह होसकता है कि योग साधन से दुगुनी तिगुनी आयु बढ़ा सकें, व्यभिचारादि से घटा सकें। श्री कृष्णचन्द्र की आयु भी एकादशस्कन्ध अ० ६ में १२५ वर्ष की ही लिखी है॥

यदुवंशोऽवतीर्णस्य भगवतः पुरुषोत्तम !।
शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥
नाऽधुना तेऽखिलाधार ! देवकार्यावशेषितम् ।
कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥

कृष्ण से ब्रह्मा ने कहा कि आप को यदुकुल में १२५ वर्ष बीते, अब कोई देवकार्य बाक़ी नहीं रहा। यह वंश भी नष्टप्राय होगया॥

अब सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में लक्ष, दशहज़ार और १ हज़ार वर्ष की आयु बताना व्यर्थ है, रामचन्द्र जी की भी इतनी ही आयु हुई है। कहीं २ वर्ष शब्द का अर्थ दिन भी लिया जाता है क्योंकि वाल्मीकीय रामायण में जब राम चन्द्र के पास ब्राह्मण मरे पुत्र को लाया है तब " पञ्चवर्षसहस्रकम् " अर्थात् ५००० वर्ष की आयु बताई है, टीका में लिखा है कि–"वर्षशब्दोऽत्र दिनपरः" अर्थात् यहां दिन का वाचक वर्ष शब्द है " किंचिन्न्यूनचतुर्दशवर्षं इत्यर्थः " कुछ कम १४ वर्ष अर्थ किया है। इसी से सिद्ध है कि किसी भी युग में १०० वर्ष से अधिक आयु नहीं होती थी। पुराणों की कथा बहुधा मुसल्मानी ढकोसलों से मिलती जुलती है, हमारी समझ में यह इसी समय की भरती है॥

पुराणों के प्राचीन होने में स्वयं पौराणिकों को भी विश्वास नहीं है क्योंकि एक बंगाली पण्डित ने अपने पुस्तक में लिखा है कि श्रीमद्भागवत बोपदेव की बनाई है। यथा–

श्रीमद्भागवतस्यानुक्रमणी रमणीकृता ।
विदुषा बोपदेवेन भिषक्केशवसूनुना ॥

हरिलीला नामक पुस्तक में भी लिखा है ॥

श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते ।
विदुषा बोपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रितुष्टये ॥

ज्ञानेश्वर मिश्र ने जो गीता की टीका बनाई है उस में उन्हों ने १२३२ शकाब्द में हेमाद्रि का होना सिद्ध किया है और बोपदेव हेमाद्रि के ही समय में हुये थे इस से भागवत की अत्यन्त नवीनता सिद्ध होती है, भागवत के चूर्णिका टीका में इन श्लोकों को उद्धृत किया है जिस से भागवत की अर्वाचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है ॥

पुराणों की सम्पूर्ण असम्भव और असत्य कहानी लिखी जाँय तो एक बड़ा भारी पुस्तक बन जाय इस के अतिरिक्त इन के परस्परविरोध दिखाने को भी एक स्वतन्त्र पुस्तक रचने की आवश्यकता है ॥

देवीभागवत अ० १ स्कन्ध १ में लिखा है:-

विविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च
वितण्डाछलयुक्तानि मिथ्याऽमर्षकराणि च ॥ २९ ॥

सब पुराण और विविध शास्त्र छल वितण्डा से भरे हैं। इस ने शास्त्रों पर भी धूल झोंक दी है क्योंकि स्वयं पुराण है ना ?

पाठकवर्ग ! जो कुछ मैंने इस पुस्तक में लिखा है सब अपने हृदय की शङ्कारूप से लिखा है, किसी का चित्त दुखाने के लिये नहीं। ईश्वर इस से वैर भाव को दूर करे, हमें शान्ति दे, यही हमारी प्रार्थना है। आप लोग भी इस के गुण ग्रहण कर वेदों पर श्रद्धा करेंगे, तभी मेरा श्रम सफल होगा ॥

शमित्योम्

—•—

जगन्मोहनिरास -)
स्वर्ग में महासभा ।)
आर्यसमाज क्या है ।=)
महर्षिजीवनचरित्र–आल्हाध्वनि -)॥
मोहनीमन्त्र)॥
समीक्षाकर ≡)
शास्त्रार्थ कलकत्ता ≠)
शास्त्रार्थ हैदराबाद ।)
पतिव्रतधर्मप्रकाश ।।)
अबलासन्ताप ≡)
पतिव्रताधर्ममाला)॥
शिशुशिक्षा २ भाग -)॥
३ भाग =) ४ भाग ।)
सीताचरित्र १ भाग ।-) २ भाग ।-)
३ भाग ।-) ४ भाग ।-) चारों भाग १।)
नारायणीशिक्षा गृहस्थाश्रम उर्दू १।)
दमयन्तीस्वयंवरनाटक ≡)
वर्णव्यवस्था ≠)
शिक्षाध्याय)॥।
वल्लभकुलचरित्रदर्पण।) वल्लभकुलइति-
हास नाटक ।) हिन्दुस्थिटानियां -)
स्वर्गप्राप्ति ≡)
पत्रप्रबन्धमञ्जरी ।-)
कणठीजनेऊ का विवाह -)
नीतिशतक ≡)
गणरत्नमहोदधि १)
इतिहासपुराण स्मृति नहीं)॥
स्त्रीअधिकार मीमांसा -)जीवात्मा)॥
पौराणिकदर्पण)॥

पुरुषसूक्त)।।
स्वामीजी का जीवनचरित्र प्रथम भाग
बढ़िया काग़ज़ ।-) घटिया ।)
हकीकतराय का जीवनचरित्र)॥
आर्यीआयतहो)।।।
गृह्यचिकित्सा ।) वैदिकधर्मप्रचार ।।।)
एकादशीमहात्म)॥
डेविस की राय)। के २
ऐतिहासिकनिरीक्षण प्र० ≠) द्वि०भाग≠)
यथार्थसुखाभिवर्धन -)॥
यथार्थशान्तिनिरूपण ।)
वीरता पर व्याख्यान -)॥
क़वायदपटवारियान ।)
मार्डर्नहिस्टरी संक्षिप्त अंग्रेज़ी ।≠)

भजनपुस्तकें–

नगरकीर्त्तन ≡) वनिताविनोद ≠)
आर्यसंगीतपुष्पावली ।≠)
भजन पुस्तक)॥
भजनेन्दु-नयेख़्यालोंभजनोंसहित-)
रामायण का आल्हा द्वि० भाग)॥
भजनविलास -)
श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।-) बढ़िया ।≡)
ईशोपनिषद्भाष्य -) केनोपनिषद्भाष्य -)॥
कठोपनिषद्भाष्य ।) प्रश्नोपनिषद्भा०।)
मुण्डकोपनिषद्भाष्य ≡) संस्कृतप्रबोध ≡)

सामवेदभाष्य का पूर्वार्ध ५।)

ॐ मनुस्मृतिभाषानुवाद

बढ़िया काग़ज़ १।) तीसरी बार छपा है

दयानन्दतिमिरभास्कर का उत्तर "भास्करप्रकाश" १) मात्र बढ़िया १॥)

हितोपदेश भाषानुवाद तथा श्लोक १)

मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षा=) दिवाकरप्रकाश ।)

श्लोकयुक्त वैदिक निघण्टु ≡)

वेदप्रकाश मासिकपत्र के प्रथम भाग १ वर्ष का ॥=) द्वितीय ॥=) तृतीय ॥=) ४ भाग ॥=) ८ भाग ॥=)

संस्कृत स्वयंसिखाने वाली संस्कृतभाषा प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय पुस्तक -) तृतीय पुस्तक =)॥ चतुर्थ ।=) चारों की कच्ची जिल्द ।॥≡) पक्की जिल्द ।॥)

संस्कृतप्रवेश)॥

ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः -)॥। शब्दकोष ।)

अज्ञाननिवारण चतुर्थ भाग मूल्य =)

आलहा मनु ॥=) चाणक्यनीतिसार -)।

धर्मरत्नाकर ≡)

पोस्टकार्ड बड़े ≡) व ।) व ।-) सौ

यजुर्वेदभाष्य १६) सत्यार्थप्रकाश १॥)

भूमिका १।) संस्कारविधि ॥)

उणादिकोश ॥) निरुक्त ॥=)

आर्योद्देश्यविनय ≡) पञ्चमहायज्ञविधि -)॥

चारोंवेदमूल ५) चारोंवेदों की सूची १॥)

शतपथमूल ४) दशोपनिषद् मूल ॥=)

शंकराचार्य का जीवनचरित्र ॥)

बंगाली सत्यार्थप्रकाश १॥)

पञ्चकन्याचरित्र)॥ द्रौपदी चरित्र -)॥

विवाह के मन्त्र)।

भागवतविचार -)

नास्तिकाविष्कार–जिस में प्राचीन बन्दूक आदि के प्रमाण हैं)॥।

विवाहचतुर्दशी -)

बालविवाहनाटक)॥। अन्त्येष्टिकर्म)॥।

आर्यसमाज के नियम नागरी ≡)। १०० सैकड़ा, अंग्रेज़ी में ।) १०० सैकड़ा

व्याख्यानका विज्ञापन–जो चार जगह छपाकर सब उपदेशकों के काम में आता है =) १०० सैकड़ा अंग्रेज़ी भी

वीराशिकधर्म और पियासोफी)॥।

नागरी रीडर नं० १ मूल्य)। नं० २ मूल्य -)

सन्ध्योपासन)। १०० का १।) ५०० का ५)

टके सेर लक्ष्मी)॥

भागवतपरीक्षा)॥

१४ विद्या ६४ कला)।

३ व्याहृतिव्याख्या)॥। अष्टाध्यायी ≡)

आर्यमतमार्त्तण्ड।) धातुपाठ ।)

सन्ध्योपासनमीमांसा -)

ईसाईमतपरीक्षा)॥

ईश्वरसिद्धि =)॥

अपने पुस्तकों पर ३) में ॥) और १०) में २) कमीशन छोड़े जायंगे। सर्वसाधारण को सामवेद मनुभाषानुवादादि पारमार्थिक और लौकिक सुधार के पुस्तक लेने का अच्छा अवसर है पता–तुलसीराम स्वामी–मेरठ

ओ३म्

डा० भवानीलाल भारतीय
संख्या ...त्रि - १४८...
तिथि ...
पुस्तकालय ...२३४८...

कानपुर

वृत्तान्त

अर्थात्

भारतमहामण्डल और आर्य्यसमाज कानपुर के मध्य में कुछ शास्त्रार्थ विषयक संस्कृत पत्रव्यवहार

जोकि

सरस्वतीयन्त्रालय

प्रयाग

में मुद्रित हुआ

२६८८
ल. पु.
१४२
12.10.14

सं० १९५८ वि०

प्रथमवार ५०० मूल्य ।॥

ओ३म् ॥

विदित हो कि कानपुर में भारतधर्ममहामण्डल के महोपदेशक पं० गोविन्दराम शास्त्री सहित महामन्त्री पं० दीनदयालु शर्म्मा महाशय ता० ६ जनवरी को आये और आर्य्यसमाज तथा स्वामी दयानं० जी के वैदिकसिद्धान्तों पर कुछ अनुचित कटाक्ष करके यथातथा व्याख्यान देने लगे इस पर आर्य्यसमाज कानपुर ने अनुचित कटाक्षावली को न सहन करके (क्योंकि सनातन वैदिकधर्म के विरुद्ध मतमतान्तरों के प्रचार को तो यह समाज कब सहन कर सकता था क्योंकि इस मतमतान्तर के बखेड़े से देश को जो हानि और दुर्दशा प्राप्त हुई है वह देशभक्तों से छिपी नहीं है) एक विज्ञापन शास्त्रार्थ के हेतु छाप कर प्रकाशित किया और १२ । १ । ९२ को पं० लक्ष्मीदत्त जी महाराज को शास्त्रार्थ के हेतु फर्रुखाबाद से बुलाया तथा एक तार पं० तुलसीराम शर्म्मा उपदेशक प्रतिनिधि को बुलाने के निमित्त लखीमपुर भेजा दैवसंयोग से लखनौ से उक्त पं० जी भी १९ । १ । ९२ को यहां आये उधर महामण्डल वालों में शास्त्रार्थ की चर्चा आर्य्यसमाज के नोटिस को देख, फैली और जैसा कि महामण्डल वालों का दस्तूर है कि लेखबद्ध शास्त्रार्थ से खींचा तानी करना उसी के अनुसार आर्य्यसमाज के शास्त्रार्थ विषयक नोटिस के उत्तर में टालम टोली करने के लिये जो २ पत्र उधर से वा इधर से आये गये और जो कुछ परिणाम हुआ—हमारे पाठकवर्ग को उस की वास्तविकता जानने की उत्कण्ठा होगी अतएव हम अविकल सब पत्रों को लिख कर उन का अभिप्राय भाषा में भी प्रकाशित करते हैं कि जिस से पाठकगण सत्यासत्य तथा कौन पक्ष शास्त्रार्थ से पराङ्मुख हुआ निर्णय कर सकें ॥

मन्त्री आर्य्यसमाज, कानपुर

विज्ञापन ॥

सर्वसाधारण को विदित हो कि महामन्त्री और कुछ अन्य महाशय धर्ममहामण्डल के यहां आये हैं और व्याख्यान दे रहे हैं आर्य्यसमाज सत् और असत् के निर्णय करने में सदा तत्पर है—यदि इस उत्तम अवसर पर पूर्वोक्त महाशयों के साथ शास्त्रार्थ द्वारा सत् और असत् का निर्णय हो जाय तो अतिहर्ष का विषय होगा—

खुशालीराम शर्म्मा—मन्त्री आर्य्यसमाज, कानपुर

वक्तव्य-इस विज्ञापन पर पं० दीनदयालु जी ने अपने व्याख्यान में केवल यह कहा कि हम शास्त्रार्थ को सन्नद्ध हैं जिस का सामर्थ्य हो करे इत्यादि २ तब आर्य्यसमाज के सभ्यों ने यह विचार कर कि यद्यपि उन्हों ने हमारे नोटिस का उत्तर लिख वा छाप कर नहीं दिया तथापि यदि शास्त्रार्थ हो जावे तौ उत्तम है अतएव निम्नलिखित पत्र रजिष्टरी करा कर फिर उन की सेवा में भेजा—

श्रीयुत पण्डित दीनदयाल जी शर्म्मा—महामन्त्री भारतधर्ममहामण्डल कानपुर नमस्ते, जो कि आप ने आज आर्य्यसमाज के शास्त्रार्थसम्बन्धी विज्ञापन को देख कर अपने व्याख्यान के अन्त में कुछ शब्द इस प्रकार के कहे थे कि जिन का अभिप्राय कुछ विद्यमान सभासदों द्वारा ज्ञात हुआ कि आप शास्त्रार्थ के लिये आरूढ़ हैं अतएव निवेदन है कि आप कृपा करके उभयपक्ष की सम्मति से शास्त्रार्थसम्बन्धी नियम, स्थान, समय, दिवस और मध्यस्थादि निश्चित करलें और इस का उत्तर शीघ्र दीजिये विलम्ब न हो—

खुशालीराम शर्म्मा मन्त्री आर्य्यसमाज, कानपुर

वक्तव्य-इस पर कई दिवस में समय विताने के लिये उत्तर दिया वह यह है—

आर्य्यसमाजमन्त्रिषु खुशहालीरामेषु भारतधर्म्ममहामण्डलीयविदुषा माशीरस्तु— मा० कृ० १ सं० १९५८ वि०

इह खलु मध्ये कानपुरपत्तनं बहूनि विप्रतिपत्तीच्छावेदकानि भवद्भिर्ज्ञप्तिपत्राणीतश्चेतश्च लोचनगोचरीकृत्य समवलोक्य राजकीयमुद्रासमलङ्कृतं भवत्प्रेषितपत्रं च भवद्विप्रतिपत्तिध्वान्तध्वंसनाय निम्नावेदितसमयाभ्युपगमेन श्रीभारतधर्ममहामण्डलीयविचक्षणा वैदिकमार्गसंरक्षणे दत्तेक्षणा रात्रिन्दिवप्रचण्डमार्त्तण्डमण्डलायन्ते-१ कथा च गीर्वाणवाण्यामेव भविष्यति २-विचारश्च प्रथममनुश्रयश्रद्धेन किङ्कियद्गृह्यत इति भविष्यति तदनुमूर्त्तिपूजनपितृश्राद्धभगवदवतारप्रभृतयो वेदबोधितकर्त्तव्यताकास्सन्तीत्यस्मिन्विषये भावी ३-तटस्थश्च न्यूनातिन्यूनषाडङ्कवेदविद्भिरप्रबन्धकर्त्तारस्साक्षिणश्चैतन्नगरवास्तव्यास्सभ्यास्स्माथिताश्च स्युः भवद्धितेप्सुर्दीनदयालु शर्म्मा मन्त्री भारतधर्म्ममहामण्डलस्य ॥

दीनदयालु शर्म्मा मन्त्री महामण्डल

कानपुर मा० कृ० १ सं० १९५८

आशय-इस कानपुर नगर में बहुत से शास्त्रार्थ की इच्छाद्योतक आप के विज्ञापनपत्र इधर उधर देख कर और आप के भेजे रजिस्टरी पत्र को अ

वलोकन कर आप के शास्त्रार्थ के अन्धकार को दूर करने के लिये निम्नलिखित प्रतिज्ञाओं के स्वीकार से वैदिकमार्ग की रक्षा को लक्ष्य में रखने वाले भारतधर्ममहामण्डल के पण्डित रात्रि दिन तेजस्वी सूर्यमण्डल से हैं–१ कथा संस्कृत में होगी—२ और प्रथम इस विषय पर विचार होगा कि वेदशब्द से क्या और कितना ग्रहण किया जाता है तत्पश्चात् मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, अवतार आदि वेदविहित कर्त्तव्य कर्म हैं इस विषय में होगा–३ और मध्यस्थ न्यून से न्यून अङ्गों सहित एक वेद जानता हो तथा ग्रबन्धकर्त्ता और साक्षी लोग इस नगर के निवासी और प्रतिष्ठित हों ॥

वक्तव्य–इस पर आर्य्यसमाज की ओर से निम्नलिखित उत्तर भेजा गया ।

मा० कृ० २ वि० १९४८ । श्रीमत्कानपुरार्य्यसमाजात्प्रेरितपत्रमिदम्

सावद्दीनदयालुशर्म्मन्महामन्त्रिवर्य्यं भारतधर्ममहामण्डलस्य नमस्ते

१–भवदुत्तरितम्पत्रमलाभिवेद्यञ्चावेदि विचारोपि त्वदैच्छिकशाब्दिकपथेनैवो ररीकृतोस्माभिः परन्तु कथनेन समन्तल्लेखोऽपि भवेत् तस्मिँस्तस्मिँश्च लेख निबद्धेपत्रे वादिप्रतिवादिनोः सभापतेश्च हस्ताक्षराणि स्युः

२–शास्त्रार्थविषयोपि भवत्प्रतिश्रुत एव प्रतिश्रूयते—

३–मध्यस्थप्रभृतयश्च यथा भवल्लेखम्पक्षपातविरहिणं उभयपक्षानुमत्याशु नियम्यन्ताम् ॥

४–मत्पत्रोत्तरे भवद्भिर्बहुविलम्बितमनुकम्पयेदानीम्माविलम्ब्यताम् ।

भवदुत्तराभिकाङ्क्षिमन्त्रिखु.शालीरामस्य कराक्षराणि

आशय–आप का उत्तर पाया और वृत्तान्त जाना शास्त्रार्थ भी आप की इच्छानुसार शब्द द्वारा हम को स्वीकृत है परन्तु कथन के साथ उस को लिखते भी जावें । और हर एक लेख पर वादी प्रतिवादी तथा सभापति के हस्ताक्षर होते जावें ।

२–जिस विषय पर आप ने शास्त्रार्थ की प्रतिज्ञा की है उसी पर हमने भी।

३–और मध्यस्थादि भी आप के लेखानुसार पक्षपात रहित उभयपक्ष की सम्मति पूर्वक शीघ्र नियत कीजिये ।

४–मेरे पत्र के उत्तर में आप ने बहुत देरकी कृपा करके अब देर न कीजिये।

वक्तव्य–द्वितीया के पत्र का उत्तर भी चतुर्थी की तिथि डाल कर वास्तव में पञ्चमी को हमारे पास आया–जिस की रसीद से पञ्चमी सिद्ध है—

श्रीः

मा० कृ० ४ सं० ४८ वि०

श्रीकानपुरीयार्य्यसमाजमन्त्रिवरायुष्यानेधि—

अहो आनन्दो यत्किलनिरुक्तसमयस्वीकारेण श्रीमताकथाभ्युपागामि ॥ परम्भवता स्वकरकमलविन्यस्ताक्षरपत्रिकायां वर्णितविशेषणविशिष्टसदस्यतटस्थप्रभृतीनान्नाम नालेखीतिकृपया तन्नामतदागमनसमयाभिज्ञतया कृतार्थनीयोऽयञ्जनः ॥ येन प्रतिहतप्रबन्धको विचारः प्रवर्त्तताम् ॥

भवद्धितेप्सुर्दीनदयालुशर्म्मा

मन्त्री भारतधर्ममहामण्डलस्य

आशय—बड़े आनन्द की बात है कि आप ने निर्दिष्टप्रतिज्ञा को स्वीकृत करके कथा को प्रमाण किया परन्तु आप ने अपने हस्तकमल से लिखी चिट्ठी में उक्त विशेषणविशिष्ट (कम से कम एक वेद जानने वाला) मध्यस्थ सभासद् आदि का नाम नहीं लिखा इस लिये कृपा करके उन के नाम और उन के आगमन समय की सूचना से कृतार्थ कीजिये। जिस से निर्विघ्न शास्त्रार्थ हो सके—

(उत्तर आर्य्यसमाज से) मा० कृ० ६ सं० ४८ वि०

ओ३म्

भारतधर्म्ममहामण्डलमहामन्त्रिवर्य्यश्रीदीनदयालुशर्म्मंत्रमस्ते,

श्रीमतां मा० कृ० ४ चतुर्थीलिखितं पत्रमागतं तदुत्तरयता पत्रद्वारैतच्छास्त्रार्थोपयुक्तसदस्यतटस्थादिनिर्णयमसुलभं विलम्बास्पदं च मन्यमानेनानेन जनेनात्मसमाजानुमत्यनुगामिनेदं विज्ञाप्यते तद्यथा—निम्नावेदितैतन्नगरस्थायगण्यरायबहादुरोपाह्वच्छेदीलालगुप्त, पं० बर्य्यपृथ्वीनाथप्राड्विवाक, राजकीयपाठशालास्थप्रधानाध्यापक पं० विश्वम्भरनाथाभिख्य, बाबूपाह्वक्षेत्रनाथाभिख्यप्राड्विवाकानां स्थानेषु भवदभिमतैकतरस्मिन्स्थाने उभयपक्षस्थाश्चत्वारश्चत्वार एव सौम्यजनाः समेत्यैतद्विषयकसदस्यतटस्थादिवरणं कुर्वन्तु तत्कृतयाशु सूचयन्तूक्तस्थानेषु कस्मिन्कदा के च सौम्या भवत्पक्षस्थाश्चत्वारः प्रेषयिष्यन्तेऽस्मत्पक्षस्थाश्चयथा—१ पं० श्यामसुन्दर शर्म्मा—२ (पांडे) यमुनाप्रसाद शर्म्मा—३ पं० लक्ष्मीदत्त शर्म्मा—४ खुशालीराम वर्म्मा चेति । समागमकालश्चैवं स्याद्यत्र खलु स्थानाधिपतिरप्यात्मस्थाने स्थातुं शक्नुयात् । मदनुमतस्तु षड्घण्टाध्वन्यन्तरं सायङ्कालः कार्य्योचितः प्रतीयते । अविलम्बनस्योत्तरं देयमिति शम् ॥

भवद्धितेप्सुः खुशालीरामवर्म्मा —कानपुरस्थार्य्यसमाजमन्त्री

आशय—आप का ४ चतुर्थी का लिखा पत्र पहुंचा—उस के उत्तर' दन है कि पत्र व्यवहार में अधिक विलम्ब होता है इस लिये किसी ष्ठित पुरुष के स्थान पर दोनों ओर से चार २ भद्र पुरुष मिल कर शास्त्रार्थ के लिये मध्यस्थादि सम्पूर्ण विषयों का निश्चय कर लें इस के लिये समाज ने निम्नलिखित पुरुषों के स्थान निश्चित किये हैं—१—लाला छेदीलाल रायबहादुर २—पं० पृथ्वीनाथ वकील ३—पं० विश्वम्भरनाथ हेडमास्टर हाई स्कूल ४—बाबू क्षेत्रनाथ वकील। कृपा करके मुझे शीघ्र सूचित कीजियेकि पूर्वोक्त पुरुषों के स्थानों में से किस स्थान पर, कब और कौन २ चार भद्रपुरुष आप के भेजे जायँगे। हमारी ओर से पं० श्यामसुन्दर शर्म्मा पांडे यमुनाप्रसाद शर्म्मा पं० लक्ष्मीदत्त शर्म्मा और बा० खुशालीराम वर्म्मा उपस्थित होंगे समय एकत्र होने का ऐसा हो जिस में स्थानाधिपति अपने स्थान पर मिल सके। मेरी सम्मति में छः बजे सायङ्काल का समय इस के निमित्त उचित प्रतीत होता है। इस का उत्तर शीघ्र दीजिये॥

वक्तव्य—इस मा० कृ० ६ के हमारे पत्र का उत्तर मण्डल की ओर से मा० कृ० ९ को मिला और जब कि शास्त्रार्थकमिटी आर्य्यसमाज में पेश हुआ तो मालूम हुआ कि उन्हों ने चार दिन के विलम्ब से तो उत्तर दिया तिस पर भी चतुराई यह कि मा० कृ० ९ के स्थान पर मा० कृ० ६ लिखी है अतएव वह पत्र मण्डल की सेवा में तिथि शुद्ध कराने को भेजा गया तब बड़े काठिन्य से पं० दीनदयाल जी ने ६ के अङ्क को काट कर ९ बनाया तिस पर हस्ताक्षर करने को बहुत सा कहा परन्तु वहां तो कोई कहता है कि बताओ वेद संहिता में कहां लिखा है कि जहां कुछ अक्षर काटा जाय वहां हस्ताक्षर करे जावें और कोई कुछ २ निदान हस्ताक्षर करने से सर्वथा निषेध ही किया तब वह पत्र विना हस्ताक्षर के ही हमने ले लिया क्योंकि हम को तो शास्त्रार्थ करना अभीष्ट था और वे लोग चाहते थे कि इस पर ही अनबन हो कर शास्त्रार्थ रुकजाय अस्तु—उस शोधित तिथि के पत्र की नकल यह है—

श्रीः

आर्य्यसमाजमन्त्रिषु खुशहालीरामेषु भारतधर्म्ममहामण्डलीविदुषामाशीरस्तु—
मा० कृ० ६ (काटकर ९ बनाई गई) सं० १९४८ वि०

विद्वन् भवत्पत्राभिप्रायम्मनसि विमृशन्मन्यामहे पदस्मदीयतात्पर्य्यं व्युत्पन्नइव न समग्राहि भवता कथमन्यथाखान्पृष्टः कोविदारानाचष्ट इति न्यायम-

'रायबहादुरोपाध्यायच्छेदीलालप्रभृतीनामन्यतमस्य सद्मन्युभयपक्षीयव-
र्ष्टयकास्सम्यास्समेत्य कथाम्विनिश्चिनुयुरित्येतदर्थंम्वयम्प्रार्थिता मिरीक्ष्यतां
स्मिन्स्वपत्रे तटस्थप्रबन्धकर्त्तृनामागमसमयप्रत्ययार्थमत्रभवन्तोऽस्मानभ्यर्थित-
वन्तः परमस्माभिस्तेषां नामसमयाभिधा भवद्भ्यश्श्वदतास्तीतेति तन्नामसम-
याभिधानमुत्तरं युक्तंनैवम्विधाः प्रलापस्तस्मादास्तान्तावत्तदप्रस्तुतचिन्तयाल-
मस्प्रस्तुतप्रस्तावेनात्र भवानेव दुर्निरीक्ष्य स्वप्रतिज्ञाहान्यादिनिग्रहग्रहगृहीतो
भविष्यति तत्वतो यदि विप्रतिपित्सवएव भवन्तो नालीकवार्त्तया समयन्निनी-
षवस्तर्हि स्वप्रतिश्रुतार्थं साकल्येन सम्पाद्य वयं विज्ञापनीया इत्यलमतितरा-
वाचां विसर्गेण

भवद्धितैषुर्दीनदयालुशर्म्मा मन्त्रीभारतधर्म्ममहामण्डलस्य ।

आशय–विद्वन् ! आप के पत्र के अभिप्राय को विचारने से मालूम होता है कि हमारे पत्र का तात्पर्य आप ने अच्छी तरह नहीं समझा नहीं तो "बूझे ग्राम बताए कचनार" की तरह रायबहादुर छेदीलाल आदि कों में से किसी एक के स्थान पर दोनों पक्ष के आठ सभ्य मिल कर कथा का निश्चय करलें इस के लिये हम से क्यों प्रार्थना करते । अपने पूर्व पत्र में देखो कि प्रबन्ध-कर्त्ता व मध्यस्थ आदि के निश्चित करने को आप ने हम से प्रार्थना की थी परन्तु हम ने यह बात आप के ही ऊपर छोड़ी थी इस लिये उन के नाम आदि लिख कर उत्तर देना ठीक था न कि ऐसा प्रलाप । सो बस कीजिये इस प्रकरणविरुद्ध प्रस्ताव से क्योंकि इस से आप ही प्रतिज्ञा हानि आदि निग्रहस्थान में आइयेगा । वास्तव में यदि आप शास्त्रार्थ ही करना चाहते हैं और झूंठ मूंठ बातों से समय बिताना नहीं चाहते हैं तो अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को पूर्णतया सम्पन्न करके हमें सूचनादो—बस अधिक बात बढ़ाने से ॥

उत्तर आर्य्यसमाज की ओर से

भारतधर्ममहामण्डलमहामन्त्रिवर पं० दीनदयालुशर्म्मंन्नमस्ते—
दिनचतुष्टयविलम्बेन भवतां पत्रमागतमेतेनाऽनेहोभिनीषा तु भवत्स्वेव प्रति-
भाति । आम्रान्पृष्ट इत्यादिन्यायोपि भवद्भिरेवानुरुध्यते यतोऽस्मत्पूर्वपत्राशयो
नैवाबोधि । आहोस्वित् विजानन्तोऽप्यविजानन्त इव समयं निनीषन्ति ।
अतएव प्रार्थ्यतेऽस्तिचेच्छास्त्रार्थेयिषा तर्ह्यस्मत्पूर्वपत्रानुसारि कार्य्यं कृत्वा
शास्त्रार्थयन्तु न चेद्यथेष्टम् ॥

येद्धस्मत्पूर्वपत्राशयो नैवावोद्धुतएवार्य्यभाषानुवादोपि भवद्बो विधिक्रियते स यथा—

"(आशय) जोकि आप ने हमारे पूर्वपत्र का आशय नहीं समझा क्योंकि हम ने रायबहादुर छेदीलाल आदि के स्थान पर निर्णयार्थ आप को बुलाया था सो आप ने अपनी बुद्धि से समझ लिया कि वे वहां शास्त्रार्थ (कथा) का निश्चय करना चाहते हैं इस कारण आप के समझने के लिये अब की बार हम भाषा में अपनी पत्री का अनुवाद करे देते हैं जिस से आप सुगमता से समझ सकें"—

(अनुवाद)

४ दिन के विलम्ब से आप का पत्र आया जिस से आप ही की ओर से समय बिताना प्रतीत होता है "बूझे आम बतलाये कचनार" यह दृष्टान्त भी आप की ही ओर घटता है क्योंकि हमारे पूर्वपत्र का आशय या तो आप ने समझा नहीं अथवा जान बूझ कर अनजान की भांति समय बिताया चाहते हैं इस लिये प्रार्थना है कि यदि आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो हमारे पूर्वपत्रानुसार कार्य्य करके शास्त्रार्थ कीजिये नहीं तो आप की इच्छा ॥

पूर्वपत्र का आशय ।

मा० कृ० ६ सं० ४८

मा० ध० मं० महामन्त्री जी नमस्ते, आप का मा० कृ० ४ चतुर्थी का पत्र आया उस का उत्तर देते हुए आदि २ (देखो इस पुस्तक के पृष्ठ ८)

आप का हितैषी मु. शालीराम वर्म्मा

मन्त्री आर्य्यसमाज, कानपुर

वक्तव्य—इस पत्र को लेकर जब आर्य्यस० के सभासद् बा० बलदेवसहाय गये और जो कि पत्र व्यवहार बा० राजबहादुर सा० वकील मेम्बर महामंडल के द्वारा होता था अतएव जब ऊपर लिखा पत्र उन को दिया तो प्रथम तो कहा कि इस पत्र पर तिथि नहीं लिखी इस से हम नहीं लेंगे तिस पर बा० बलदेवसहाय ने तिथि माघ कृ० १० लिखदी फिर कहा कि यह तिथि दूसरी कलम से है इस पर हस्ताक्षर करो हस्ताक्षर भी बा० बलदेवसहाय ने कर दिये क्योंकि हम को शास्त्रार्थ से बचना होता तो पं० दीनदयालु जी ने जो तिथि मा० कृ० ६ को काट कर ९ बनाई और हस्ताक्षर को कहा तो न किये

भी न करते परन्तु हम तो चाहते थे कि किसी प्रकार शास्त्रार्थ —तब उन्हों ने दूसरी बात निकाली कि इस पत्र का भाग भाषा अतएव हम न लेंगे, बहुतेरा कहा कि पत्र का भाग भाषा में नहीं है किन्तु आप ने हमारे पूर्वपत्र का आशय अपने (पुरन्धर) पण्डितों से अन्यथा समझा इस लिये पत्र संस्कृत में है परन्तु आप के समझने के हेतु भाषा में उस का अर्थ है परन्तु वहां पत्र कौन ले सकता था क्योंकि महामन्त्री तथा महोपदेशक तो २५ ता० जनवरी को सवेंढ़ी प्रस्थान कर गये क्योंकि उन को अभीष्ट था कि जब तक यहां रहेंगे आर्य्यसमाज पीछा न छोड़ेगा अतएव दो चार दिन को टाल कर फिर आवेंगे—अस्तु कितनी ही प्रार्थना की परन्तु बा० राजबहादुर सा० ने पत्र नहीं लिया तो बड़ी कठिनाई से उन्हों ने उर्दू में यह लिख कर अंगरेजी में हस्ताक्षर कर दिये कि

(नक़ल उर्दू में) चूंकि इस चिट्ठी का एक जुज़ ज़ुबान भाषा में है लिहाज़ा ऐसी चिट्ठी के लेने की मुझे इजाज़त नहीं है जिस में एक लफ़्ज़ भी भाषा का हो (हस्ताक्षर अंगरेज़ी में) राजबहादुर, लीडर

बस इस पत्र के वापिस आये से और पं० दीनदयालु जी के चले जाने से हम को शास्त्रार्थ की आशा न रही और हम ने भी पण्डितों को रवाना कर दिया ॥

द्रष्टव्य ॥

निम्नलिखित पुस्तकें विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं—

संस्कृत ग्रेमेटिकल प्राइमर प्रथमभाग ।॥। टाईप में बिना गुरु के संस्कृ सीखो । द्वितीयभाग -)॥ कानपुर वृत्तान्त ।॥ आरावृत्तान्त एक शास्त्रार्थ -) छप रहा है भजनपुस्तक -) छप रहा है सत्यार्थप्रकाश का कोष ॥) शीघ्र छपेगा केवल दरख़ास्त भेजिये । ता० ३ । २ । ९२ ई०

तुलसीराम शर्म्मा उपदेशक आर्य्यप्रतिनिधिसभा

पश्चिमोत्तर व अवध स्थान लखनौ

शीघ्र मिलने को, दूसरा पता

पं० छुट्टनलाल शर्म्मा स्वामी, परीक्षितगढ़, जिला, मेरठ

कमीशन

२० कापी के मूल्य में २४ और ५० के मूल्य में ७० तथा १०० के मूल्य में १५० कापीं मिल सकती हैं

विज्ञापनम् ॥

हमारे यहां शुद्ध साबुन बन कर त्यार होता है सब से उत्तम और सस्ता माल हमी लुटाते हैं १) सेर १ जो महाशय सीखना चाहें ५) रु० दक्षिणा देकर घर बैठे सीख लो तिल की ओट पहाड़ है ५) में ही चिट्ठी द्वारा सीख लो सब काम बता देंगे पता साफ २ नागरी में लिख कर मनी आर्डर भेज दो बनाना न आवे तो रुपये वापिस कर लो ।

किसी मत से सम्बन्ध नहीं रखती सब को पसंद हैं

अच्छे नाटक सस्ते

बालविवाहनाटक मूल्य ।॥ जुवारी नाटक ।॥ झुलफैनाटक ।॥

धर्म्मसंबन्धी पुस्तकें—धर्म्मनिर्णय -) ज्योतिषदर्शन सभाप्रसन्न दानकरणविधि पं० बलदेवप्रसाद शर्मा कृत । सम्पा० आर्यसि० पं० भीमसेन शर्मा कृत पुस्तकें और भी सब पुस्तकें हैं जो चाहो सो लिखो भर्तृहरिशतकादि अन्य पुस्तक हैं

आयुर्वेदोक्त औषधा०—प्रयाग की कुल दवा यहां मिलती है

पं० छुट्टनलाल स्वामी परीक्षितगढ़ जिला—मेरठ

ओ३म्

॥ पुराणोत्पत्ति ॥

३६/२३१६

इस पुस्तक को

श्रीयुत पण्डित गणेशप्रसाद जी शर्मा
सम्पादक भारत सुदशा प्रवर्त्तक ने
सशंकितों के भ्रम निवारणार्थ
आर्य्य समाज फर्रुखाबाद
की आज्ञा से प्रस्तुत
किया

सम्वत् १९५२ विक्रमी

३५५८

पण्डित मनोहरलाल मिश्र प्रोप्राइटर के द्वारा

कानपुर

रसिक यन्त्रालय में मुद्रित हुआ

प्रथमबार ५०० प्रति] १८९५ [मूल्य प्रति पुस्तक)॥

॥ आर्य समाज के नियम ॥

(१)—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२)—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि कर्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३)—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४)—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए

(५)—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके कर चाहिए।

(६)—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७)—सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिए।

(८)—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(९)—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(१०)—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

ओ३म्

॥ पुराणोत्पत्ति ॥

इन दिनों भारतवर्ष में भागवतादि पुराणों को प्राचीनता पर लोगों का ऐसा झूठा विश्वास जमा है कि बहुधा लोग वेद शास्त्र को छप्पर पर रख पुराणों का पढ़ना, सुनना, सुनाना ही परमधर्म मान बैठे हैं आधुनिक कथाओं का इतना विस्तार हुआ है कि धर्मशास्त्र की चर्चाही उठगई बावजूद इसके कि भारत वासियों के धर्म का आधार वेद है। ब्रह्मा से लेकर आजतक सब लोग वेद को ईश्वरीय उपदेश मानते आए। काल के परिवर्त्तन से थोडे से स्वार्थी लोगों ने वेदों का मान घटादिया, जैसा कि वायु पुराण में कहा है कि :—

प्रथमंसर्वशास्त्राणां, पुराणंब्रह्मणास्मृतम् ।

अनन्तरंचवक्त्रेभ्यो, वेदास्तस्यविनिर्गता: ॥ (अ० १। ५६

ब्रह्मा ने प्रथम पुराणों को बनाया तिस पीछे उनके मुख से वेद निकले। ऐसाही वर्णन मत्स्य व पद्म पुराण में भी है ॥

देखो पौराणिकों की धूर्त्तता कि वेदों के ऊपर भी पुराणों को रखदिया ऐसा किया तभी तो भोले लोग कथक्कड़ों पर मोहित हो, सर्वस्व खो बैठे और अब भी लुट रहे हैं ॥

पाठकों को ज्ञात होगा कि इन दिनों जो भागवतादि पुराण कहलाते हैं उन्हें भोले लोग व्यास कृत मानते हैं, परन्तु यथार्थ में व्यास जी के बनाए पुराण नहीं हैं-कोई गौतम बुध के समय और कोई मुसल्मानी राज्य में बने हैं वे १८ पुराण इस भांति हैं जिनका प्रमाण पद्म पुराण के उत्तर खण्ड के २४वें अध्याय में पार्वती प्रति शिव वाक्य में मिलता है यथा :—

वैष्णवं नारदीयंच, तथा भागवतं शुभम् ।
गारुड़ंच तथा पाद्मं, वाराहंशुभ दर्शनम् ॥१॥
सात्विकानिपुराणानि, विज्ञेयानिशुभानिवै ।
ब्रह्मांडं ब्रह्मवैवर्त्तं, मार्कण्डेयं तथैवच ॥२॥
भाविष्यंवामनंब्राह्मं, राजसानि निबोधमे ।
मात्स्यं कौर्म्यं तथा लिंगं, शैवं स्कान्दं तथैवच ॥३॥

आग्नेयंच शडेतानि, तामसानि निबोधमे ।

(अर्थ)—१ विष्णु, २ नारद, ३ भागवत, ४ गरुड़, ५ पद्म, ६ वाराह, ७ ब्रह्माण्ड, ८ ब्रैह्मवैवर्त्त, ९ मार्कंडेय, १० भविष्य, ११ वामन, १२ ब्रह्म, १३ मत्स्य, १४ कूर्म, १५ लिङ्ग, १६ शिव, १७ स्कन्द और १८ अग्नि इनमें प्रथम के छः सात्विक, बिचले छः राजस और अन्त के छः तामसी मानेगये हैं ॥

इनके सिवाय १८ उपपुराण भी कहलाते हैं जिनके नाम* नोट में हैं। जैसे ४ वेद ४ उपवेद होते हैं इसी चालपर १८ पुराणों के १८ उपपुराण भी ठहरा लिये हैं परन्तु जो उपवेद जिस वेद का है वह उसका मण्डन करता है। किन्तु पुराण का उपपुराण कहीं २ खंडन भी करता है दोनों का यथार्थ उद्देश्य व अभिप्राय नहीं मिलता, मिले कहां से वहां तो लीला ही अंड बंड गढन्त की है। उक्त पुराणों के सिवा वायु, और देवी भागवत भी पुराण माना जाता है। यद्यपि अग्नि पुराण ऊपर आचुका तथापि कोई २ लोग वह्नि पुराण भी बतलाते हैं और ब्रह्मवैवर्त्त भी दो प्रकार का मिलता है इसलिये दूसरे का नाम प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्त रखलिया है और स्कन्द पुराण कोई विशेष ग्रन्थ [खास पुस्तक] नहीं मिलता, किन्तु उसके काशी रेवा, उत्कल, भीम आदि खंड जुदे २ प्रचरित हैं ॥

ऐसा जान पड़ता है कि पुराण बने पीछे जब किसी वृक्ष, नदी, ताल, पहाड़ आदि की पूजा अभीष्ट समझी तभी उस नाम से एक कथा गढ़ली गई और उसका कोई नाम धरदिया, अग्नि पुराण के भीतर अर्जुनपुर माहात्म्य, कावेरी माहात्म्य तथा ब्रह्मवैवर्त्त के अन्तरगत गरुड़ाचल माहात्म्य, घटिकाचल माहात्म्य, इसी तरह सत्यनारायण की कथा में भी किसी में इतिहास समुच्चय किसी में रेवाखण्ड को सुधर धर महर्षि व्यास को बदनाम किया है। पुराणों की संख्या जैसे १८ से अधिक अब है वैसेही उपपुराण भी १८ से अधिक होते हैं।

॥ *उपपुराण ॥

१ आदि, २ नृसिंह, ३ वायु, ४ शिवधर्म्म, ५ दुर्वासा, ६ कपिल, ७ नारद ८ नन्दिकेश्वर, ९ शुक्र या उशनस, १० वरुण, ११ सांब, १२ कल्कि, १३ महेश्वर, १४ पद्म, १५ देव, १६ पराशर, १७ मरीच, १८ भास्कर या आदित्य ॥

इनके सिवा बृहन्नारदीय, मानव, कालिका, वसिष्ट, ब्रह्माण्ड, कूर्म, भार्गव, भविष्य, आदि नाम भी उपपुराणों के सुने जाते हैं इस हिसाब से उपपुराण भी १८ से अधिक होते हैं ॥

फिर कौन यह न कहेगा कि मिलावट नहीं है। आगे के लेख से पुराणों की व्यवस्था ज्ञात होगी॥

रामायण वा भारत का नाम यद्यपि पुराणों की संख्या में नहीं, परन्तु पुराणों की भांति ये ग्रन्थ भी सुनेजाते हैं अतएव इनके मध्ये भी अपना विचार हमने प्रकट करना उचित समझ लिखा है॥

॥ वाल्मीकीय रामायण ॥

इसका लेखा पुराणों में नहीं आया है हमारी समझ में यह भारतादि सब से प्राचीन इतिहास है औरों की अपेक्षा इसमें मिलावट कम पौराणिकों ने की है श्री महाराज रामचन्द्र का अवतार त्रेता में मानागया है और उसके बाद यह बनी इसमें तो सन्देह नहीं परन्तु समय का पता ठीक नहीं कहा जासक्ता॥

॥ महाभारत ॥

इसका नाम भी पुराणों की गणना में नहीं आया है, महाराज कृष्ण व युधिष्ठिर का होना, द्वापर के अन्त व कलि के प्रारम्भ में मानने से इस समय का इतिहास और पुराणों से प्राचीन मानलेने में हम सङ्कोच न करते, यदि उसमें यह न लिखा होता कि "अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः" कि अठारहो पुराण के बनाने वाले सत्यवती सुत अर्थात् वेद व्यास जी हैं और पुराणों का बनना हम आगे के लेख में अनुमान डेढ़ार पन्द्रह सौ वर्ष के अरसे परसे का सिद्ध करेंगे उस हिसाब से महाभारत भी नवीन ही प्रमाणित होता है जब कि १८ पुराणों का कर्त्ता उसमें लिखा है तो इससे बोध होता है कि भारत व दूसरे पुराणों का समय एकही है॥

"अष्टादशपुराणानाम्" इस श्लोक को यदि पौराणिक लोग पीछे मिला मानलें तो हम और पुराणों से भारत को प्राचीन इस दलील पर कह सकते हैं कि भारत में पुराणों का लेख नहीं और दूसरे पुराणों में भारत का नाम आया है इससे स्पष्ट है कि और पुराण भारत के पीछे बने और तदपेक्षा नवीन हैं परन्तु भारत भी व्यासोक्त नहीं, क्योंकि उसमें लिखा है कि राजा रन्तिदेव के घर २०१०० गांय रोज मारी जाती थीं, तब भी मांस खाने वालों को मांस प्राप्ति का उलहना (शिकायत) ही रहता था, देखो शान्ति पर्व अध्याय २८ श्लोक १२७

से १२८ तक* आर्य्य राजा गो मांस खाना महापाप समझते हैं और मुसल्मानों के राज्य में गोघात प्रचरित हुआ है इससे बोध होता है कि भारत मुसल्मानों के समय की गढन्त है ॥

दूसरे भारत में यह भी लिखा है कि २४ हजार भारत व्यासजीने बनाया और उसकी सूची १५० श्लोकों में लिखी परन्तु अब जो देखाजाता है तो उसमें एक लाख सातहजार तीन सो नब्बे १०७३९० श्लोक और अनुक्रमणिका [सूचीपत्र] में २६८ श्लोक मिलते हैं वनपर्व की टीका में नीलकंठ स्वामी ने भी (जोकि एक प्रसिद्ध टीका कार हैं) लिखा है कि इस स्थल में श्लोक और अध्याय अधिक देखते हैं परन्तु यह हम नहीं जानते कि कौन से श्लोक और कौन सो अध्याय नवीन हैं* क्या नीलकंठ स्वामी भी स्वामी दयानन्द स० जी के सिखाए हुए थे, जो खुद अपना सन्देह प्रकट करते हैं ॥

तीसरे भारतादि पुराणों में बौद्धावतार माना है, और जैसा माना है वैसाही स्वरूप इस समय बौद्ध मतवालों में पाया भी जाता है इससे जान पड़ता है कि पुराण गौतमबुध के समय में अथवा उनके बाद बने, डाक्टर हंटर के लेखानुसार गौतमबुध सन ईस्वी से ५४३ वर्ष पूर्व हुए, जिन्हें आजतक २४१८ वर्ष होते हैं, और व्यासजी का गतकाल ४९९४ वर्ष का है, इससे ज्ञात हुआ कि बौद्ध से २५५६ वर्ष पूर्व व्यासजी थे ॥

महा भारत मध्ये डाक्टर हंटर का मत है कि वह ईसासे १२०० वर्ष पूर्व बना इस हिसाब से भारत को ३०९४ वर्ष होते हैं ॥

---

*सांकृती रन्तिदेवस्य, यांरात्रिमवसन्गृहे ।
आलभ्यंतशतंगाव:, सहस्राणिचविंशति: ॥१२७॥
तत्रस्मसूदा:क्रोशंति, सुमृष्टमणिकुण्डला: ।
सूपंभूयिष्टमश्नीध्वं, नाद्यमासंयथापुरा ॥१२८॥

* अत्रश्लोकाधिक्यं, माध्यायाधिक्यंचदृश्यते क्वाधिक्यं जातमितिनविद्म: ॥

॥ विष्णु पुराण ॥

डाक्टर हंटर के लिखे प्रमाण यह पुराण १०४५ ई० में बना है अर्थात् व्यास के ३८४८ वर्ष पीछे क्योंकि व्यास का समय ४८८४ वर्ष अबसे पूर्व का है ॥

॥ भागवत ॥

भारत के मोक्ष पर्व ३३४ वें अध्याय के देखने से जाना जाता है कि शुकदेव जी भीष्मपितामह के समय पूर्व ही मुक्त* होगये थे फिर युधिष्टिर के पौत्र परीक्षित के समय में कहां से आए, जब कि शुकदेव का आना ही सिद्ध नहीं तो भागवत कथा का सुनाना कैसा ?

भागवत में यह भी लिखा है कि नारद जी व्याकुल होके बदरिकाश्रम में विष्णु के पास गये। वहां पर उन्होंने कहा कि म्लेच्छों ने महादेवजी का मन्दिर तोड़डाला और शिव जी ज्ञानवापी में डूबगये, औरङ्गजेब ने सन् १६५८ ई० में राजगद्दी पर बैठा था उसके बाद काशी का मन्दिर तोड़ा था इस बात को सब इतिहासवेत्ता मानते हैं इससे पाया जाता है कि भागवत् को बने २३६ दो सौ छत्तिस वर्ष के लगभग हुये ॥

देवी भागवत के टीकाकार ने भी लिखा है कि भागवत बोपदेव ने बनाई है और यह बोपदेव बंगाल के प्रसिद्ध कवि जयदेव का भाई था जिसने की गीत गोविन्द बनाया है, डाक्टर हंटर ने लिखा है कि गीतगोविन्द सन् १२०० ई०

[यथा] *शुकस्तुमारुतादूर्ध्वं, गतिंकृत्वान्तरिक्षगां ।
दर्शयित्वा प्रभावंस्वं, ब्रह्मभूतोऽभवत्तदा ॥

शुकदेव वायु से अन्तरिक्ष उर्द्धगति करके और निज प्रभाव दिखाकर ब्रह्म भूत हुए, भीष्म जी शरशय्या पर लेटे हुए कहतेहैं कि नारद के मुख से यो हमने सुना और यथा प्रसङ्ग व्यास जी से भी ॥

के करीब लिखा गया इस हिसाब से भी भागवत् को बने ६०० वर्ष होते हैं, फलतः भागवत् व्यास या शुक द्वारा नहीं बनी क्योंकि इन पिता पुत्र का समय ४८८४ ऊपर लिख आये हैं।

पद्म पुराण ॥

यह भी व्यासोक्त नहीं, कारण कि उसके होने का प्रमाण शंकराचार्य के पश्चात् का है, डाक्टर हंटर साहब का लेख है कि शंकर स्वामी सन् ८०० ई०में मलाबार में पैदा हुये और भारतवर्ष भर में उपदेश दिया कश्मीर भी गये और हिमालय पहाड़ पर केदारनाथ नामक स्थान पर ३२ वर्ष की आयु में मरे, ये सारे जगत् को माया और अपने को ब्रह्म कहते थे, इनके मत का खण्डन पद्म पुराण में है जैसा कि नीचे लिखा है अतएव पद्म पुराण को बने भी अनुमान ८ या ९सौ वर्ष हुये।

मायावाद मसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मेवच।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मण रूपिणा (पद्मपुराणे)

शिवजी अपनी प्रिया पार्वती से कहते हैं कि हे देवि, कलियुग में मैंने ब्राह्मण का रूप धरके वेदान्त शास्त्र को कि गुप्त रूप से बौद्ध मत है रचा है।
बस इससे स्पष्टहै कि शङ्कराचार्य के बाद पद्म पुराण बना न कि व्यासने बनाया।

॥ ब्रह्माण्ड पुराण ॥

यह पुराण जहांगीर बादशाह के समय के पश्चात् बना प्रतीत होता है। इस बात को प्रायः सब इतिहासज्ञ मानते हैं कि आलू, तम्बाकू, तथा गोभी ये तीनों वस्तु भारतवर्ष की उपज नहीं किन्तु एमरीका से इनका बीज आया और अब भारतवर्ष में बहुतायत से होने लगा। जहांगीर ने तोजुक जहांगीरी में लिखा है कि आलू, तमाखू और गोभी ये तीनों चीजें मेरे पिता (अकबर) के समय में एमरीका से एक पादरी लाया था तमाखू को अंगरेजी में टोबाकू tobaeco कहते हैं। वही नाम बिगड़कर तमाखू शब्द इन दिनों भी प्रचरित है। और उक्त

पदार्थों का पता भी अति प्राचीन पुस्तकों में नहीं पाते। अतएव जहांगीर का कथन विश्वास के योग्य है। इसी तमाखू का खंडन ब्रह्माण्ड पुराण में मिलता है इसलिये ब्रह्माण्ड पुराण जहांगीर के समय अर्थात् १६०५ ई० के लगभग बना है जिसे दो सौ से ऊपर वर्ष होते हैं। उसमें लिखा है कि :—

प्राप्ते कलियुगे घोरे, सर्ववर्णा श्रमेतराः ।
तमालं भक्षितंयेन, सगच्छे न्नरकार्णवे ॥

घोर कलिकाल में सब वर्ण व आश्रम तथा इतर जन जो तमाखू खाय नरक को जायंगे ॥

॥ लिंग पुराण ॥

इसको बने भी ७०० वर्ष के लगभग हुए हैं, यह पद्म रामानुज के पीछे बना डाक्टर हंटर का कथन है कि रामानुज सन् ११५० ई० में हुए कि जिन्हों ने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म की जलती छाप लगाय वैष्णव मत चलाया था। वह साहब लिखते हैं कि १२वीं सदी के बीच उसने (रामानुजने) शिव के पुजारियों को दुश्मनी पर कमर बांधी, विष्णु के नाम से जो सब चीजों का कारण और सिरजनहार है ईश्वर के एक होने का उपदेश दिया और जब चोला खान्दान के राजा ने उसे दक्षिण में सताया तो रामानुज भागकर मैसुर के जैन राजा के देश में चलेगए, वहां का राजा वैष्णव होगया, वहां सात सौ सठ जैनियों के थे जिनमें ४ अब तक मौजूद हैं इत्यादि ॥

इन्हीं रामानुज का खण्डन लिंग पुराण में है [यथा]

शंख चक्रे तापयित्वा यस्यदेहः प्रदह्यते ।
सजीवन्कुणपस्त्याज्यः सर्व धर्म वहिष्कृतः ॥

अर्थात् शंख चक्र की तपी छाप से जिसकी देह जली है वह जीते जी सब धर्मों से गिरा हुआ मुर्दे की नाईं त्यागने योग्य है ॥

स्कन्द पुराण ॥

यह सम्वत् १२३१ विक्रमी के पश्चात् बना प्रमाणित होता है क्योंकि उस

पुराण में श्री जगन्नाथ जी की महिमा वर्णित है और जगन्नाथ का मन्दिर पुरी (उड़ीसा) में स० १२३१ विक्रमी में राजा अनंग भीमदेव ने बनवाया था यह सम्वत् मन्दिर पर भी खुदा है। अतएव ७०० वर्ष के लग भग स्कन्द पुराण को बने हुए ॥

बस इसी प्रकार औरों की भी व्यवस्था है, हमारी अनुमति में ये सब पुराण जो परस्पर खंडन मंडन करते हैं एक दूसरे की अपेक्षा थोड़े ही से समय के अन्तर से बने हैं।

उप पुराण तो इनके बादही हैं जब येही प्राचीन नहीं तो उपपुराण क्योंकर हो सकते हैं—सत्यनारायण की कथा को तो बहुत लोग जानते हैं कि कल की बात है, इसी प्रकार कहीं दोवे, कपिला आदि माहात्म भी नवीन महातम ही हैं—पुराने इतिहास केवल ब्राह्मण ग्रंथ हैं जिनमें पुराणों के लक्षण ठीक २ पाये जाते हैं किन्तु भागवतादि पुराण नहीं हैं ॥

—o:o—

का सूचीपत्र

सम्बन्धी ॥

भाषा सीखने की पहिली पुस्तक मूल्य ⁄, महसूल ,।
२ तथा दूसरी ⁄, ,॥
३ तथा तीसरी ⁄, ,।
४ गणितदिवाकर पहिलाभाग ⁄,।,।
५ दूसरा भाग (तथा) ⁄,। ,॥
६ अंक प्रकाश [जिसमें कुल पहाड़े व गुर हैं] दाम ,॥ महसूल ,॥
७ भूगोल हिन्दुस्तान नकशा सहित दाम ⁄,। महसूल ,।
८ हिन्दी कापीबुक नम्बर १।२।३।४ प्रत्येक नम्बर एकएक आना ⁄,
९ लेख दीपिका दफा तीसरी से लेकर मिडल तक २० सतर का लेख में लिख देने की लियाकत करने वाली। दाम ।⁄, ,॥
प्रसन्न ...धनी (भाषा का व्याकरण) ... ।⁄, महसूल ,।
...द्या विरोधी बातें दाम ,॥ ,॥
... सुदशा (स्त्री शिक्षा) ॥, ⁄,
...रायणी शिक्षा [तथा] १।, ⁄,
...नभाषा की उन्नति ⁄, ,।
...प्रदेश चन्द्रिका ।, ,।
...पश्चिमोत्तर देश और अवध का संक्षेप वृत्तान्त दाम ⁄, महसूल ,।
...भारतवर्ष के मध्यदेश का वृत्तान्त ⁄,,।
...ग्रन्थ संग्रह [अनेक प्रकार की विद्याओं की पुस्तक] दाम ।⁄, ⁄,

. सम्बंधी व अनेक उपकारी

बाल्य विवाह (धर्म शास्त्र के विरुद्ध है] दाम ⁄, महसूल ,।

२० गीतावली
२१ विधवा विपत्ति उपन्यास
२२ शास्त्रार्थ जब्बलपुर
२३ लन्दन का यात्री (घर बैठे वलायत की सैर कीजिए)
२४ धर्मतत्व
२५ शास्त्रार्थ विष्णुगढ़
२६ स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी [शिक्षा हमी] दाम ⁄, महसूल
२७ भारत त्रिकाल दशा
२८ अल्प किंचित्मा
२९ एकता विषयक ~~व्याख्यान~~
३० वर्ण व्यवस्था नाटक
३१ समुद्र यात्रा नाटक
३२ तावीज (इसकी असलियत व उपाय) दाम ⁄, ,।
३३ एकान्त वासी योगी [एक स्वप्न पढ़ने ही लायक है
३४ कलंक शतक
३५ सत्यामित्र
३६ अञ्जाम बदी नाटक
३७ रस तरङ्ग
३८ भूत लीला [भूत की असलियत के दृढ़ प्रमाणों से इसके पढ़े भूत भागता है] दाम ⁄,। महसूल ,।
३९ भागवत व्यवस्था
४० हवन के लाभ [फायदे]
४१ पुराणोत्पत्ति
४२ आर्य्यसमाज के उपकार
४३ स्वामी भास्करानन्द सरस्वती जी की वलायत की यात्रा का वृत्तान्त दाम ⁄,। महसूल ,।
४४ जगत्पुरुषार्थ प्रथम भाग
४५ भजनामृत सरोवर (भजनोंकी)

४६ भजन विनोद दाम ,॥ महसूल ,॥
४७ आर्य शिक्षा /, .॥
४८ जन्त्री १०८ वर्ष की .॥ ,॥
४९ संगीत स्वरोदय [भजनों की] /.॥ .॥
५० अष्टाध्यायी का पहिला अध्याय सटीक भाषा टीका ₰, .॥
५१ आर्य समाज के दश नियम छन्द शिखरणी में दाम ,। महसूल ,॥
५२ गुजर भाषा प्रबोधनी (गुजराती जुबान सीखने की पुस्तक मये एक नाटक के) दाम ₰,॥ महसूल ,॥

॥ उर्दू की पुस्तकें ॥

नुसखा खत्त अक्समदिया दाम १।.₰,
नवेद वेवगान दाम /, महसूल .॥
आईना अंजील ,। .॥
सदाकत अगुविद ,। ,॥
मुक्ति प्रकाश ,। ,॥
सांसारिक धर्म पहि: है ₰,। ,॥
अंजील परीक्षा ,॥ ,॥
सत्यासत्य विवेक [शास्त्रार्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती व पादरी स्काट साहब] दाम ₰, ,॥
शौहर व जोरु के वाहमी बरताव दाम ₰, महसूल ,॥
१० ब्रह्म समाज की असलियत .॥ .॥
११ गुमराह ब्रह्मपन्थ /.॥ ,॥
१२ आर्य समाज व ब्रह्म समाज की तालीम दाम ,। महसूल ,॥
१३ मजहबे जैन व आर्य दाम ,। महसूल ,॥
१४ आगमनी [मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी कृत] दाम ₰, म० .॥
१५ लार्ड रावर्ट क्लाइव का जीवन चरित्र दाम ॥, महसूल /,
१६ गुलदस्ता
१७ योगियां बरते
१८ उर्दू कापी बुक
हरएक कापी एक आना
१९ कशफुलहिसाब हिस्सा अव्वल ₰,॥ ,॥
२० जुगराफिया हिन्दुस्तान मये नकशा के दाम /,॥ महसूल ,॥
२१ जवानी हिसाब ,। ,॥

॥ अंगरेजी ॥

१ एन्टी क्रिश्चियन ट्रेक्ट दाम ,। ,॥
२ हिम्‍स (भजनों की) दाम ॥, ,॥

विदित होकि ऊपर लिखी पुस्तकें नकद दाम आने पर वा वेल्यूपेविल पार्सल द्वारा मगाने से भेजी जाती हैं. ५) रु० तक की लेने से २०, सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

नम्बर को

पुस्तकें जोकि मेरी बनाई ... वृद्धि कोई मुफ्त बांटने को ले तो ... मत में से एक तिहाई कम ...

इनके सिवा जो पुस्तकें ... दूसरे २ कुतुब फरोशों के पा... भी बाजार से खरीद करके ... सुभीते के वास्ते भेजी जासकती ...

पं० गणेशप्रसाद शर्मा
मनेजर व मालिक
गुर्जर पुस्तकालय—फरुख...

॥ भारत सुदशा प्रवर्त्तक ... मासिकपत्र विद्या, शिक्षा, इतिह... और्पदेश आदि विविध विषयों से ... होकर नागरी भाषा में सुन्दर ... और टाइपमें छपता है। दाम १।, पता - मनेजर भा० सु० प्र० फर्रुख...